संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-41, फरवरी-मई 2002

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl.com
eklavyah@yahoo.com

एक प्रति: 15 रुपए
वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
आजीवन सदस्यता: व्यक्तिगत 1000 रुपए
संस्थागत 2000 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: बंगाल की खाड़ी में स्थित अंदमान-निकोबार द्वीप समूह के एक द्वीप का लिया गया एक हवाई फोटोग्राफ। जिसमें हरे-भरे जंगलों से ढंके टापू के साथ हिलोरे लेता सागर भी दिखाई दे रहा है। किसी समुद्री टापू पर कुदरती खूबसूरती के साथ-साथ वहां की ज़िंदगी में घुल-मिल गई हुई एक और अहम चीज़ होती है – ज्वार-भाटा।

स्कूली स्तर पर ज्वार-भाटे को सरलीकृत करते हुए समझाने की कोशिश की जाती है। लेकिन फिर भी ज्वार-भाटा काफी पेंचीदा मसला है। ज्वार 24 घंटों में दो बार क्यों आता है? रोज़ एक-सी ऊंचाई का ज्वार क्यों नहीं आता? दुनिया के सारे समुद्रों में अलग-अलग ऊंचाई के ज्वार क्यों आते हैं? क्या सूरज-चांद के अलावा और भी कोई कारक होते हैं जो ज्वार-भाटे को प्रभावित करते हैं? इन्ही सब सवालों के जवाब विस्तार से पढ़िए 'ज्वार एवं भाटा' लेख में। *देखिए पृष्ठ 17 पर।*

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***इनवेस्टिगेटिंग द अर्थ:*** *प्रकाशक: अमेरिकन जियोलॉजिकल इंस्टीट्यूट।* ***द फिज़िकल यूनिवर्स:*** *कोनराड बी. क्रासकोफ, आर्थर बेसर; प्रकाशक: मेकग्रा हिल न्यूयॉर्क।* ***द यूनिवर्स एक्सप्लेंड:*** *कोलिन रोनान; प्रकाशक: थेम्स एंड हडसन। माइकल सी. मिक्स, पॉल फार्बर, कीथ आई. किंग; प्रकाशक: हारपर कोलिंस कॉलेज पब्लिशर्स।* ***द केंब्रिज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडिया, पाकिस्तान, बंग्लादेश, श्रीलंका:*** *संपादक फ्रांसिस रॉबिन्सन; प्रकाशक: केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।* ***अंदमान एंड निकोबार, आइलैंड्स इन द सन:*** *अशोक दिलवाली, राजन कौल। स्पेनटेक पब्लिशर्स प्रायवेट लिमिटेड।* ***बायोलॉजिकल साइंसेज़:*** *विलियम टी. कीटन, जेम्स एल. गूल्ड; प्रकाशक: डब्लू. डब्लू. नार्टन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

एक ज़रूरी सूचना

संदर्भ को नियमित रूप से हर दो महीने में आप तक पहुंचाने के वायदे के बावजूद एक बार हम फिर पिछड़ गए हैं। समय को पाटने के लिहाज से संदर्भ का यह अंक संयुक्तांक हैं। लेकिन इसे एक अंक के बराबर ही माना जाएगा इसलिए हमारे वार्षिक सदस्यों को को पूरे अंक मिलेंगे। यानी यदि आपकी सदस्यता 44वें अंक में खत्म होने वाली है तो सदस्यता 44वें अंक तक बरकरार रहेगी।

हम अभी भी पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक संदर्भ को हर दो महीनों में पहुंचाने का तारतम्य कायम हो सके। इस अंक के प्रकाशन में हुए विलंब के लिए खेद है।

- संपादक मंडल

ज्वार एवं भाटा 17

हम में से जिन लोगों ने समुद्र नहीं देखा होता है उनकी कल्पनाओं का समुद्र कही-सुनी बातों, देखे गए चित्रों, किताबों में पढ़े वर्णन पर टिका होता है। समुद्री जीवों की हैरत-अंगेज़ दुनिया, सागर के सीने पर तैरते जहाज़, मूंगे की चट्टानें, अथाह गहराई और विशाल खनिज भंडार..... जैसी बातों के साथ समुद्र के दैनिक जीवन का एक हिस्सा है – ज्वार और भाटा।

स्कूली पाठ्य पुस्तकों में ज्वार-भाटे के संबंध में सामान्यतः काफी संक्षिप्त जानकारी दी होती है। विशेष तौर पर एक स्वाभाविक सवाल को अक्सर छोड़ ही दिया जाता है कि चांद की तरफ पानी का उठना तो समझ में आता है परन्तु उससे उलटी ओर का पानी भी क्यों ऊपर उठ जाता है। ऐसे कई सवालों को ध्यान में रखते हुए इस लेख में ज्वार-भाटे के कई उलझे पहलुओं को सुलझाने की कोशिश की गई है।

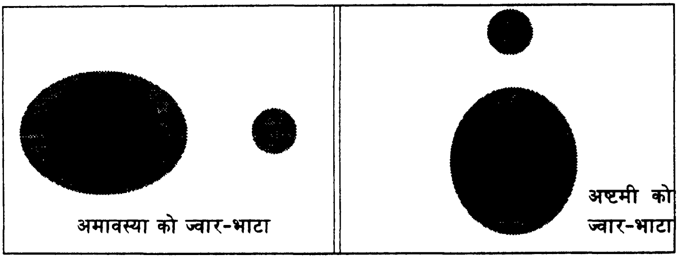

कितना विज्ञान जानना ज़रूरी 45

विज्ञान पढ़ाने वाले शिक्षकों को यह सवाल हमेशा परेशान करता है कि उन्हें कम-से-कम विज्ञान का कितना ज्ञान होना ज़रूरी है? विज्ञान शिक्षण के मायने बच्चों को सिर्फ तथ्यात्मक जानकारी को याद करवाना नहीं है। विज्ञान में तथ्यात्मक जानकारी का भंडार विशाल है। दुनिया भर से हज़ारों पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं जो विज्ञान के क्षेत्र में हो रही हलचलों की ताज़ा जानकारी मुहैया करवाती हैं। विज्ञान के क्षेत्र में नई जानकारियां इतनी जल्दी पुरानी पड़ जाती हैं कि आपको इन परिवर्तनों के प्रति सदैव सचेत रहना पड़ता है।

इन हालात में शिक्षकों के लिए बेहतर होगा कि बड़ी मात्रा में वैज्ञानिक जानकारी जानने और वह जानकारी बच्चों को देने के बजाए, बच्चों को वैज्ञानिक विधि में सक्षम बनाएं, उन्हें ज्ञान को हासिल करने व समझने के काबिल बनाएं। बच्चे अगर निरीक्षण करना, विश्लेषण करना, आंकलन करना, सृजन करना आदि सीख जाते हैं तो भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में वे अपने आप तैयार हो जाएंगे।

विकास योजनाओं में . . . 71

किसी भी समाज या समुदाय के विकास के पैमाने क्या होने चाहिए? उस समुदाय के पास कितनी पूंजी है, या उस समुदाय के पास कितनी इंसानी पूंजी है? इंसानी पूंजी को नापने के कुछ पैमाने हो सकते हैं जैसे: उस समुदाय में शिक्षा, स्वास्थ्य, इंसानी हुनर, वित्तीय बचत की स्थिति आदि का आकलन। शायद यही मापदंड इंसानी पूंजी को दर्शा सकते हैं।

यदि विकास के केन्द्र में लोगों को रखा जाए और लोगों को साध्य मानकर विकास योजनाएं बनाई जाएं तो विकास को मानवीय आयाम दिया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में कई देशों ने इस किस्म की योजनाएं बनाकर अपेक्षित लक्ष्य भी हासिल किए हैं। इस संबंध में विख्यात अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक के अनुभवों और विचारों को पढ़िए इस लेख में।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 41

फरवरी-मई 2002

इस अंक में

आपने लिखा . . . 6

पंखे, थर्मामीटर . . . 11
कैरन हेडॉक

ज्वार एवं भाटा . . . 17
विक्रम चौरे

ज़रा सिर खुजलाइए . . . 32

आदिमाता की खोज . . . 33
टी. वी. वेंकटेश्वरन

हमें कितना भोजन . . . 41
जे. बी. एस. हाल्डेन

कितना विज्ञान जानना . . 45

सवालाराम . . . 52

रासायनिक क्रियाओं को. . 56

गणित की सामान्य त्रुटियां 61
एच. सी. प्रधान

दादी ने की बुनाई . . . 67
कमलेश चंद्र जोशी

विकास योजनाओं में . . . 71
महबूब-उल-हक

जादुई कॉलर बटन . . . 85
जे. बी. एस. हाल्डेन

शिकारी से बचने . . . 96

संदर्भ से नाता जोड़िए

आजीवन सदस्यता

संदर्भ से बने रिश्ते को और स्थायित्व देने का एक सुनहरा मौका है – संदर्भ के आजीवन सदस्य बनकर।

* संदर्भ की आजीवन सदस्यता राशि 1000 **रुपए** (व्यक्तिगत), 2000 **रुपए** (संस्थागत) है। **अगली उपहार योजना** का लाभ लेने के लिए आपको यह राशि 31 **अगस्त** 2002 से पहले भेजनी होगी।
* यह राशि आप एकलव्य के नाम बैंक ड्राफ्ट बनवाकर या चैक से भेज सकते हैं।
* आपकी राशि हमारे पास बतौर धरोहर जमा रहेगी। जब तक संदर्भ पत्रिका का प्रकाशन जारी रहेगा, संदर्भ पत्रिका आपको नियमित रूप से मिलती रहेगी।

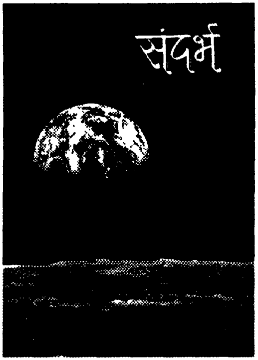

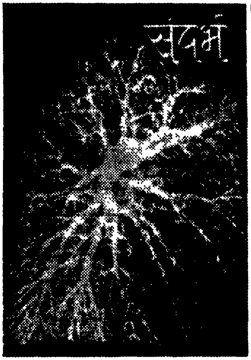

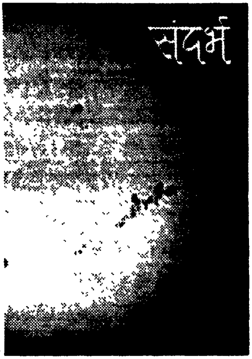

* संदर्भ का प्रकाशन अगले दस वर्ष में किसी भी कारण बंद होने की स्थिति में आपको बकाया राशि वापस लौटा दी जाएगी।

* यदि आजीवन सदस्यता लेने के बाद कभी भी आपको ऐसा लगता है कि संदर्भ आपके लिए पहले की तरह उपयोगी नहीं रही है तो आप बकाया राशि तीन साल के बाद कभी भी वापस ले सकते हैं।

आपके लिए उपहार:

यदि आप 31 अगस्त 2002 से पहले आजीवन सदस्यता लेते हैं तो आपको संदर्भ के **सजिल्द संस्करण** खंड 4, 5 और 6 बतौर उपहार भेजे जाएंगे। यानी आपके पास होंगे संदर्भ के पूर्व प्रकाशित अंक भी। **यह उपहार योजना केवल 31 अगस्त 2002 तक के लिए है।**

* और अधिक जानकारी के लिए इस पते पर संपर्क कीजिए।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद म. प्र.
पिन: 461001, फोन: 07574 - 53518,
ईमेल: eklavyah@yahoo.com या eklavyamp@vsnl.com

आपने लिखा

पनचक्की का उद्‌गम और जीत लेख बहुत अच्छा लगा। अगर चित्र भी होते तो और अच्छा लगता। पनचक्की कैसे काम करती है और इसका भारत में चलन कब शुरू हुआ यह जानने की इच्छा है। विशेषकर हरदा-होशंगाबाद के इलाके में पनचक्की का चलन कब हुआ?

मेरी मां बताती हैं कि वे बहुत समय तक घट्‌टी पर आटा पीसती थीं। मैंने जब होश संभाला तो एक आवाज़ करने वाली, पानी और खनिज तेल से चलने वाली चक्की देखी थी। फिर भी घट्‌टी का उपयोग घर में बहुत होता था, मसाले आदि घर पर ही पीसते थे। यहां घट्‌टी से मेरा आशय है हाथ से चलने वाली पत्थर की चक्की से है।

अरुण साकल्ले
शुक्रवारा वार्ड, हरदा

मैं संदर्भ का नया पाठक हूं। मुझे इसमें काफी कुछ मिल रहा है। किताबी ज्ञान (पाठ्य पुस्तकों) से भिन्न ढंग से प्रस्तुति सराहनीय है। वर्ना तो हम बहुत सारी चीज़ों को केवल कोर्स के तरीके और रटने के कारण जान नहीं पाते कि कैसे एक परिकल्पना से प्रयोगों द्वारा पुष्टि होने पर, वैज्ञानिक सिद्धांत का निर्माण होता है। यह काफी महत्वपूर्ण बात है। अतः आवश्यक है कि वैज्ञानिक विचार-धारा और वैज्ञानिक सोच वाले समाज के निर्माण के लिए हमें वैज्ञानिक प्रक्रिया को व्यवहार में लागू करना पड़ेगा। मैंने गांव से पढ़ाई की है, जहां असुविधाओं के कारण अध्यापक आने से डरते हैं। अब मैं गांव से आ गया हूं लेकिन वहां के हालात देखकर चाहता हूं कि उन लड़कों के लिए भी कुछ कर सकूं जो आज के बौद्धिकता के दौर में पिछड़ गए हैं। मैं अभी स्नातक कक्षा में पढ़ रहा हूं और विज्ञान का विद्यार्थी हूं। मुझे विज्ञान को सरलता से समझाने में रुचि है जिसमें संदर्भ काफी सहायक है। बहुत सारी पत्रिकाएं हम आर्थिक तंगी की वजह से नहीं पढ़ पाते लेकिन 'एकलव्य' का प्रयास सराहनीय है कि वह व्यवसायिकता के इस माहौल में भी अपने लक्ष्य पर अडिग है।

अंक 39 में प्रो. यशपाल का लेख बहुत अच्छा लगा। मैं हमेशा से बोझिल शिक्षा पद्धति का विरोधी रहा हूं। क्या हम अपनी समस्याएं प्रो. यशपाल को लिखकर भेज सकते हैं?

अंक 40 में 'बच्चे स्कूल से जी क्यों चुराते हैं?' और पनचक्की पर जानकारी अच्छी लगी। आपने प्रश्न किया था कि तिरछी गति को खड़ी गति में बदलने का तरीका क्या हो सकता है?

मैंने अपने यहां के पहाड़ी इलाकों में देखा है कि यहां जो बेलनाकार टरबाइन बनाई जाती है वह खड़ी ही बनाई जाती है और पंखों को उसकी परिधि पर कुछ कोण में झुकाकर लगाते हैं। टरबाइन के अक्ष से भारी पत्थर (चक्की) जोड़ देते

हैं। मैं भी घराट के विषय में कुछ लिखना चाहता हूं, विशेषकर जो हमारे इलाकों में पाए जाते हैं।

मेरा एक प्रश्न या यूं कहें समस्या है – भौतिक विज्ञान पढ़ते समय मूल राशियों के बारे में पढ़ते हैं जैसे: द्रव्यमान, लंबाई, समय तापमान आदि। इन राशियों की परिभाषाएं किस प्रकार दें यह समझ में नहीं आता।

आपसे एक अनुरोध है कि प्रकाश के गुणों की खोज के बारे में किए गए कुछ मूलभूत प्रयोगों की जानकारी दें। हो सके तो मूलभूत नियमों की खोज पर एक शृंखला प्रकाशित कीजिए।

कमलेश चंद्र
पिथौरागढ़, उत्तरांचल

काफी लंबे इंतज़ार के बाद संदर्भ मिली। इंतज़ार का यह सिलसिला तब से शुरू हुआ है जब से आपने कीमत बढ़ाई है। यह एक विडंबना ही है कि हम सेवाओं के बदले मूल्य तो बढ़ा देते हैं लेकिन सेवा में गुणात्मक सुधार और भी गिरता जाता है। यह बात चाहे बिजली बोर्ड हो, या रेलवे सभी पर लागू होती है।

संदर्भ के 40 वें अंक में मेरी ही तहसील के एक व्यक्ति का खत पढ़कर काफी खुशी हुई कि संदर्भ अब राजस्थान में भी लोकप्रिय हो रही है।

'बच्चे स्कूल से जी क्यों चुराते हैं' पसंद आया। यह समस्या हर स्कूल में थोड़ी बहुत पाई ही जाती है। इसमें कुछ कारण तो अध्यापक और अभिभावकों में संवेदनशीलता का अभाव भी होता है। आपने जो वर्कशॉप या केन्द्र की बात कही है, वह वास्तव में काफी अच्छा समाधान है परन्तु दूर-दराज़ के पिछड़े गांवों में काफी मुश्किलात का सामना करना पड़ता है। बच्चों के बैठने की व्यवस्था नहीं है, एक प्रशिक्षित व्यक्ति चाहिए जो संवेदनशील होने के साथ बच्चों की सृजनशीलता को शिक्षण के लक्ष्यों से भी जोड़ सके।

सवालीराम के सवाल का जवाब 'पहाड़ कैसे बने?' ज्ञानप्रद था। किन्तु मेरे मन में यह सवाल है कि पहाड़ बनने के जो कारण आपने बताए वे अब कम क्यों हो गए हैं? आधुनिक भौगोलिक इतिहास में क्यों कोई विशाल पहाड़ नहीं बना दिखता? प्लेट के बीच जो खाली जगह होती है उनमें मैग्मा तो भर जाता होगा लेकिन क्या वह इतना कठोर होता है कि ऊपर की धरती के वज़न को अंदर धंसकने से रोके रखे?

पक्षी व्यवहार में 'कौओं' के बारे में चिंतन करके माधव गाडगिल ने पर्यावरण चेतना का वातावरण तैयार करने हेतु प्रयास किया है। हमारे यहां 4-5 साल पहले काफी कौए, बड काग, मोर और गिद्ध होते थे। लेकिन पता नहीं क्यों अचानक इनकी संख्या बहुत कम हो गई

है। गिद्ध तो पूर्णतः विलुप्त हो गए हैं। पिछले तीन वर्षों में काफी ढोर मरे लेकिन उन्हें खाने एक भी गिद्ध नहीं आया।

'पनचक्की का उद्‌गम' लेख पढ़कर समझ में आया कि हर छोटी-छोटी चीज़ के पीछे भी कितना संघर्ष छुपा हुआ है। यह बात केवल भारत में नहीं बल्कि विश्व के हर देश में पाई जाती है।

'अंतरंग राक्षस' कहानी भी हमारी असंवेदनशीलता को प्रकट करती है। कई बार हम स्वयं के प्रति संवेदनशील होते हुए भी मन में बैठे कुछ पूर्वाग्रहों के कारण दूसरों के प्रति असंवेदनशील हो जाते हैं जिसके लिए बाद में हमें पछतावा भी होता है। कहानीकार को धन्यवाद और चित्रकार की कल्पना भी काफी भावप्रधान लगी। उन्हें भी बधाई।

अंक 39 में आर. एस. राजपूत के लेख पर आपने प्रतिक्रियाएं मांगी थीं बड़ी उम्मीद के साथ अंक 40 खोला लेकिन उसमें प्रतिक्रियाएं नदारद थीं। मैंने भी अपनी प्रतिक्रिया भेजी थी हो सके तो उस बहस को जारी रखिए।

रमेश जांगिड
ज़िला हनुमानगढ़, राजस्थान

40 वां अंक मिला। 'रंगों का दोलन', 'सवालीराम', 'कागज़ की कतरनें ...' इत्यादि लेख काफी ज्ञानवर्द्धक रहे। साथ में पनचक्की का उद्‌गम भी काफी रोचक रहा। एक निवेदन है कि भौतिक, रसायन और गणित के विविध सिद्धांतों के विषय में लेख नियमित रूप से प्रकाशित किए जाएं।

एक शिकायत भी है कि मुझे 40 वां अंक 14 मार्च को मिला है। कृपया संदर्भ को समय पर प्रकाशित कर वितरित कीजिए।

नीलम टोप्पो
जरहा भाटा, बिलासपुर

पिछले अंक में पनचक्की के भारतीय उदाहरण नहीं दे पाए थे। साथ वाले पेज पर दो भारतीय पनचक्कियों के रेखाचित्र दे रहे हैं।

भारत के कई इलाकों में पनचक्कियों का लंबे समय से चलन रहा है। हरदा-होशंगाबाद इलाके की पनचक्कियों पर कोई जानकारी मिलने पर ज़रूर प्रकाशित करेंगे।

— संपादन मंडल

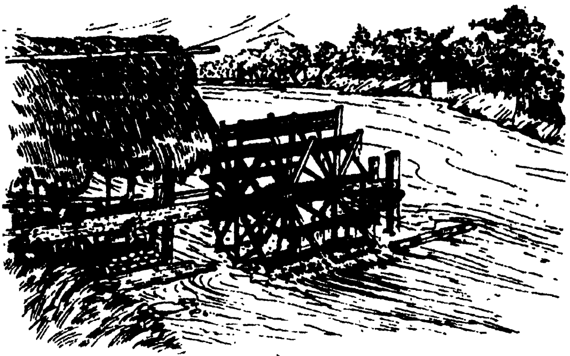

उत्तर-पूर्वी भारत में कई नदियों पर इस किस्म की पनचक्कियां देखी जा सकती हैं। इनसे अनाज की पिसाई के अलावा और भी कई काम लिए जाते हैं।

चित्रांकन. नंदकिशोर हटवाल

गढ़वाल की एक घराट (पनचक्की) जिसमें पानी की मुख्य धारा में से एक छोटी धारा अलग से निकाली गई है। यह छोटी धारा पनचक्की को गतिमान रखने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

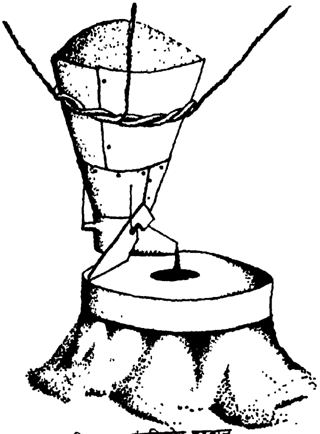

घराट का भीतरी भाग जहां अनाज की पिसाई हो रही है।

चित्रांकन: नंदकिशोर हटवाल

समस्त संदर्भ सजिल्द उपलब्ध हैं

पिछले छः अंकों में प्रकाशित सामग्री एक साथ। साथ में एक विषयवार इंडेक्स जो किसी भी लेख को तुरन्त आपके सामने ले आए।

पिछले छः सालों में प्रकाशित सामग्री संदर्भ के छः सजिल्द में समेटी गई है।
संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25, 26-30 और 31-36 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं।

प्रत्येक का **मूल्य 60 रु.** (डाकखर्च अलग से)

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र., 461001
ई - मेल: eklavyah@yahoo.com

एकलव्य
ई -7/453 एच. आइ. जी, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

पखे, थर्मामीटर, तापमान से कहां तक पहुंची चर्चा

कैरन हेडॉक

दरअसल विज्ञान का मतलब होता है सवाल पूछना, अनुमान लगाना, सवालों के जवाब ढूंढने के तरीके खोजना, अवलोकन दर्ज करना, परिणामों का विश्लेषण करना, और निष्कर्ष तक पहुंचना। क्या हमारी विज्ञान की कक्षाओं में इतना सब कर पाने के लिए शिक्षक मानसिक रूप से तैयार हो पाते हैं?

अगर आप विज्ञान में रुचि न रखते हों तो शायद आपने भारत के विज्ञान शिक्षण की स्थिति के बारे में रोना-गाना नहीं सुना होगा। हो सकता है आपको लगता हो कि हम विज्ञान पढ़ाने में बहुत ही बढ़िया काम कर रहे हैं – ज़रा प्रथम दर्जे के सभी अप्रवासी भारतीय वैज्ञानिकों को तो देखिए!

लेकिन अगर आपको इन अच्छे अप्रवासी भारतीय वैज्ञानिकों में से किसी से बात करने का मौका मिले तो आप सुनेंगे – वे सभी भारतीय स्कूलों के विज्ञान शिक्षण की मौजूदा स्थिति को कोसते रहते हैं। वे यह जानकर चकित रह जाते हैं कि विज्ञान को अब भी याद करने के लिए तथ्यों के एक पुलिन्दे की तरह समझा जाता है। विद्यार्थियों को इस बात का बिल्कुल अन्दाज़ नहीं मिलता कि विज्ञान असल में होता क्या है। उन्हें पता ही नहीं चलता कि दरअसल विज्ञान सवाल पूछना, अनुमान लगाना, सवालों के जवाब ढूंढने के तरीके खोजना, अवलोकन करना व उसे दर्ज करना, परिणामों का विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना और सवालों को दोबारा गढ़ना है। उलटे विद्यार्थी सोचते हैं कि विज्ञान सिर्फ सवालों के जवाब देना (किताबों में दिए गए 'सही', 'तथ्यात्मक' जवाब देना) है, जवाबों पर सवाल उठाना नहीं!

ऐसा सिर्फ ग्रामीण स्कूलों या सरकारी स्कूलों में नहीं होता। यह एक ऐसी मान्यता है जो हर कहीं पाई जाती है। यह सही है कि भारत अकेला देश नहीं है जहां विज्ञान शिक्षण की हालत इतनी बुरी है। पश्चिमी देशों के स्कूल भी अपनी (कुछ अलग तरह की) समस्याओं से ग्रस्त हैं।

तो, जब हम किसी स्कूल में नवाचारी, गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तरीके सुझाने की कोशिश करते हैं; तब क्या होता है? इस संदर्भ में चण्डीगढ़ के एक संभ्रान्त अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल में आयोजित कार्यशाला के दौरान मिले अनुभवों का वर्णन मैं यहां कर रही हूं।

शिक्षकों के लिए कार्यशाला

एक दिन शिक्षकों के लिए आयोजित एक विज्ञान शिक्षण कार्यशाला के अनुभव सुनिए। हम कैलेण्डर, मौसम और तापमान के एक अध्याय पर काम कर रहे थे। मैं शिक्षक की भूमिका अदा कर रही थी और शिक्षक विद्यार्थी बने थे ताकि इन नए तरीकों का उन्हें सीधा अनुभव हो सके। पाठ के एक हिस्से में मेरी यह योजना थी कि विद्यार्थी एक बड़ा कैलेण्डर चार्ट बनाएं जिसमें वे हर दिन के तापमान को नापकर दर्ज करें।

एक मौके पर मैंने हर शिक्षक से कमरे के वर्तमान तापमान का अनुमान लगाने को कहा। फिर मैंने एक थर्मामीटर देकर प्रत्येक शिक्षक से कहा कि वे कमरे का तापमान पढ़ें और नोट करें, परन्तु एक-दूसरे को बताएंगे नहीं। अंत में जब मैंने उनसे उनका अनुमान और थर्मामीटर पर पढ़े गए तापमान के बारे में पूछा, तो हमें पता चला कि थर्मामीटर पर पढ़े गए तापमान संबंधी अवलोकन 24 डिग्री सेंटीग्रेड व 25 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच में झूल रहे थे।

हालांकि फर्क मामूली था फिर भी मैंने शिक्षकों से पूछा कि इस भिन्नता के क्या कारण हो सकते हैं? उन्होंने बताया कि ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि:

- अलग-अलग कोण से देखते हुए पढ़ने के कारण थर्मामीटर पढ़ने में हुई गलती या तापमान की डिग्री गिनने में हुई गलती।
- हो सकता है कि हाथों की गर्मी से तापमान वास्तव में बढ़ गया हो। या यह भी संभव है कि कमरे के अलग-अलग हिस्सों में तापमान फर्क रहा हो।

तब मैंने शिक्षकों से पूछा कि उन्हें क्या लगता है कि कमरे के विभिन्न भागों में तापमान अलग-अलग क्यों हो सकता है? क्या ऐसा हवा के कारण हो सकता है या पंखे के कमरे के एक भाग में होने के कारण? शिक्षक कुछ

अधीर होने लगे थे कि मैं इतनी गैर-ज़रूरी बारीकियों को लेकर पीछे ही पड़ गई थी।

बहरहाल, मैंने अध्याय संबंधी मूल योजना से अलग जाने का तय किया ताकि इस सवाल का जवाब, शिक्षकों द्वारा वैज्ञानिक तरीके से ढूंढवाने की कोशिश कर सकूं। मैंने उनसे यह सवाल अपनी कॉपी में लिखने को कहा। फिर उसका जवाब सोचने और एक तरीका सुझाने को कहा जिससे हम सवाल का जवाब पा सकें। फिर मैंने निम्न-लिखित बातें बोर्ड पर लिख दीं:

प्रश्न: क्या पंखे के कारण हवा के तापमान में अन्तर आ सकता है?

अभिमत: कुछ शिक्षक सोचते हैं कि पंखे के कारण हवा का तापमान बदल सकता है, और कुछ सोचते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता।

तरीका: शिक्षकों का सुझाव था कि थर्मामीटर को पंखे के ठीक नीचे पकड़ा जाए और उससे दूर पकड़ा जाए और फिर ऐसी दोनों रीडिंग की तुलना की जाए। मैंने थर्मामीटर को पंखे के ठीक नीचे 2 मिनट तक पकड़ा और एक शिक्षक को तापमान की रीडिंग पढ़ने को कहा। फिर तापमान की एक और रीडिंग हमने पंखे से दूर जाकर ली।

परिणाम: पंखे के नीचे तापमान 24.8 डिग्री सेंटीग्रेड था जबकि पंखे से दूर सिर्फ 23.8 डिग्री सेंटीग्रेड!

निष्कर्ष: थोड़ी चर्चा के बाद शिक्षकों को लगा कि तापमान का यह अनपेक्षित अन्तर ऊंचाई के अन्तर के कारण आया होगा। थर्मामीटर पंखे के नीचे लगभग 2 मीटर की ऊंचाई पर पकड़ा गया था जबकि पंखे से दूर वह सिर्फ 1 मीटर की ऊंचाई पर ही था। तब मैंने सुझाव दिया कि हम अपने तरीके में सुधार करके फिर से कोशिश करते हैं।

अब तक शिक्षक काफी परेशान होने लगे थे कि हम इतनी फालतू-सी बात पर इतना समय बर्बाद कर रहे हैं। खैर, मैंने फिर भी ज़ोर दिया और हमने कुछ और मापन किए।

अंत में सब किसी एक बात पर राज़ी नहीं हो सके कि यह प्रयोग क्या दर्शाता है। कुछ को लग रहा था कि इससे यह पता चलता है कि पंखे के कारण तापमान कम होता है जबकि कुछ को लगा कि पंखे का कोई असर नहीं होता। किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए और प्रयोग करने की ज़रूरत थी।

शिक्षकों के सुझाव

अगले दिन हमने इस पाठ के बारे में चर्चा की। सभी शिक्षकों को लग रहा था कि पंखे वाले प्रयोग को पाठ के एक अंग के रूप में करवाना ठीक नहीं था। उनका कहना था कि उन्हें

कक्षा में इस तरह की चीज़ें नहीं करवानी चाहिए, और न वे ऐसा करवाएंगे। उन्होंने कहा कि मुझे थर्मामीटर को अलग-अलग ऊंचाई पर पकड़ने की गलती नहीं करनी चाहिए थी। मुझे पहले से ही अच्छी तरह से सोच लेना चाहिए था। एक शिक्षक ने कहा, "मैं कक्षा में कोई गलती नहीं करती क्योंकि इससे बच्चे और ज़्यादा भ्रमित हो जाते हैं – इसलिए पाठ की रूपरेखा में कोई गलती नहीं होनी चाहिए।" एक और शिक्षक ने कहा, "विद्यार्थी शोध (रिसर्च) नहीं कर सकते, वे निष्कर्ष नहीं निकाल सकते, इसका कोई फायदा नहीं।" कुछ और प्रतिक्रियाएं थीं – "जो महत्वपूर्ण है वह है मूल ज्ञान।" "अगर आप गलतियां करें तो बच्चों को आप पर भरोसा नहीं होता।" ऐसा एक अन्य शिक्षक का मत था।

फिर मैंने शिक्षकों से पूछा कि कक्षा में ऐसा एक प्रयोग करवाने के उद्देश्य क्या थे। हमने निम्नलिखित सूची बनाई:

1 यह देखने के लिए कि हवा के तापमान पर पंखे का क्या असर होता है?
2 यह जानने के लिए कि हमें अनपेक्षित परिणाम भी मिल सकते हैं। अनुमान हमेशा सही नहीं होते।
3 सोचने की प्रक्रियाओं को गति देने के लिए।
4 यह जानने के लिए कि हम गलतियां कर सकते हैं।
5 नियंत्रित चर (Variables) का महत्त्व समझने के लिए।
6 यह समझने के लिए कि नपाई में अन्तर होता है।
7 वैज्ञानिक मानसिकता को बढ़ावा देने के लिए।

फिर भी, शिक्षकों ने विरोध किया कि – यह सिलेबस में नहीं है, और हमें प्रयोग सिर्फ आधारभूत अवधारणाओं को समझने के लिए ही करने चाहिए। एक शिक्षक ने बहुत ज़ोर देकर विरोध किया कि इस पूरे पाठ में हमने सबसे ज़रूरी चीज़ तो छोड़ ही दी – वह यह कि थर्मामीटर के नीचे बल्ब क्यों बना होता है। उसमें पारा या अल्कोहल क्यों भरा जाता है, उससे जुड़ी कांच की पतली नली ..... इत्यादि और उसके बनावट संबंधी पहलू पर तो कोई बात ही नहीं की। हमने थर्मामीटर पर बने अलग-अलग पैमानों के बारे में भी कोई चर्चा नहीं की।

मैंने पूछा, "उन्हें क्या लगता है कि विद्यार्थियों को किस कक्षा से थर्मामीटर का उपयोग करना चाहिए?" थोड़ी चर्चा के बाद उन्होंने तय किया कि चौथी के विद्यार्थी थर्मामीटर का उपयोग तो कर सकते हैं, पर उसकी बनावट के बारे में अभी पढ़ने की

ज़रूरत नहीं। वह बाद में पढ़ा जा सकता है, शायद कक्षा छह में।

अन्ततः शिक्षकों ने तय किया कि कैलेण्डर का यह अध्याय; अतिरिक्त प्रयोग हटाने के बाद कक्षा 4, 5 और 6 के लिए उपयुक्त है। लेकिन, जब हमने उस प्रयोग को करने के उद्‌देश्यों को एक-एक करके दोहराया तो उन्होंने यह ज़रूर माना कि ये उद्‌देश्य महत्वपूर्ण थे, और वे विज्ञान का ही हिस्सा हैं।

एक शिक्षक ने ध्यान दिलाया कि वे अपनी कक्षा में विद्यार्थियों से प्रयोग करवाती रही हैं, पर वे कभी भी प्रयोग को वैसे रिकॉर्ड नहीं कर पाते हैं जैसे प्रयोग करते हैं। उन्होंने यह ज़रूर माना कि प्रयोगों को दर्ज (रिकॉर्ड) करना महत्वपूर्ण है, और कहा कि यह शायद प्रयोग करने के अगले दिन किया जा सकता है। एक और शिक्षक ने कहा कि चौथी के विद्यार्थी आंकड़ों के विश्लेषण के लिए ग्राफ तो बना लेते हैं, पर उन्होंने शिकायत की, "हम बच्चों को चौथी कक्षा में ग्राफ बनाने को क्यों मजबूर करें?"

कई सारे शिक्षक इस बात से काफी नाखुश थे कि हम उद्‌देश्यों की बात पर इतना समय क्यों लगा रहे हैं। उन उद्‌देश्यों का इतना गहरा विश्लेषण क्यों किया जाए, यह नहीं समझ पा रहे थे। उन्हें लग रहा था कि जो कुछ पुरानी किताबों में दिया था, क्यों न बस वही पढ़ा दिया जाए?

तब एक शिक्षक ने कहा कि असल में विज्ञान में तुक्का लगाना या अनुमान लगाने की कोई ज़रूरत नहीं होती। इसलिए 'अनुमान लगाना क्यों सीखा जाए?' इस विषय पर चर्चा छिड़ गई। शिक्षक ने कहा कि बच्चों में अनुमान लगाने की क्षमता तो होती है। यह ऐसी चीज़ नहीं जो सीखी जा सके। उसे पढ़ाया नहीं जा सकता।'

मैंने पूछा, "क्या इससे वैज्ञानिक तरीके से सीखने में मदद मिलती है?" कुछ शिक्षकों ने कहा कि हमें अनुमान लगाने के बजाए कक्षा में अचूकता (Accuracy) सिखानी चाहिए। एक शिक्षक ने कहा कि अनुमान सिखाना 'एक बीज बोने' जैसा है। किसी और ने कहा, 'अनुमान लगाना सिखाने के लिए आपको कक्षा की ज़रूरत नहीं होती।'

मैंने शिक्षकों से पूछा कि क्या उन्हें लगता है कि अनुमान लगाने का कौशल अभ्यास से सुधारा जा सकता है? उन्हें इस बात पर शंका थी। मैंने सबसे कहा कि वे इस समय के कक्षा के तापमान का अनुमान लगाएं। ठीक वैसे ही जैसा उन्होंने पिछले दिन किया था। हरेक ने अन्दाज़ लगाया और सबने 24 से 28 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच सोचा था। फिर उन्होंने थर्मामीटर पढ़ा

और पाया कि तापमान 24.5 डिग्री सेंटीग्रेड था। मैंने ध्यान दिलाया कि पिछने दिन उनके अनुमान 18 से 28 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच थे, यानी उनके अनुमान अभ्यास से बेहतर हो गए थे। कुछ शिक्षकों ने कहा, "यह तो बस *ट्रायल एंड एरर* से हुआ।" फिर मैंने पूछा, "क्या यह कक्षा में नहीं किया जा सकता?" कुछ शिक्षकों ने कहा, "मुझे कक्षा में *ट्रायल एंड एरर* पसंद नहीं है। यह एक मज़ेदार गतिविधि के रूप में करवाया जा सकता है, पर यह पढ़ाई नहीं है।" एक अन्य शिक्षक का मत था, "स्कूल के एक औपचारिक पाठ की तरह अनुमान लगाने का कौशल महत्वपूर्ण नहीं है। पर यह जीवन के लिए ज़रूरी है।"

तो कार्यशाला का अंत आते-आते, क्या मैं निरुत्साहित हो गई थी? नहीं। मैं निरुत्साहित होती अगर मैंने शिक्षकों से बस कह दिया होता कि आप कक्षा में जाकर यह प्रयोग कीजिए और वे सब सिर हिलाकर कहते, 'ठीक है।' पर हुआ असल में यह कि मैं लगातार शिक्षकों से उनके विचार और सुझाव लेने की कोशिश करती रही और उन्होंने मुझे ईमानदारी से अपने विचार दिए जो स्वाभाविक ही उनके विश्वासों पर आधारित थे, मेरे नहीं।

यह एक संवाद की शुरुआत है। हम सभी अपनी-अपनी वैज्ञानिक मानसिकता विकसित कर रहे हैं। शिक्षक इस बात पर सोचना शुरू कर रहे हैं कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं। बदलाव के प्रति प्रतिरोध तो है ही, और इस बात पर भ्रम भी है कि किस किस्म के बदलावों की ज़रूरत है, पर क्या यह सब ज़रूरी नहीं है? क्या यह वैज्ञानिक तरीके से सोचने और काम करने का परिचायक नहीं है?

कैरन हेडॉक: स्वतंत्र चित्रकार। चंडीगढ़ के एक स्कूल में अध्यापन कर रही हैं। बायोफिज़िक्स में शोधकार्य।

हिन्दी अनुवाद: टुलटुल विश्वास: एकलव्य द्वारा प्रकाशित बाल विज्ञान पत्रिका 'चकमक' के संपादन समूह की सदस्य हैं।

ज्वार एवं भाटा

विक्रम चौरे

जो लोग समुद्र से काफी दूर रहते हैं उनका ज्वार-भाटे से पहला परिचय पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से ही होता है। स्कूली पाठ्य पुस्तकों में ज्वार-भाटे के संबंध में सामान्यतः काफी संक्षिप्त जानकारी दी जाती है। विशेष तौर पर कुछ स्वाभाविक सवालों को तो अक्सर छोड़ ही दिया जाता है – चौबीस घंटों में दो बार क्यों आता है ज्वार या चांद की उलटी ओर का पानी भी क्यों ऊपर उठ जाता है, सूर्य का असर चांद की तुलना में कम क्यों होता है। इस लेख में ज्वार-भाटे के ऐसे कई उलझे पहलुओं को सुलझाने की कोशिश की गई है।

यूं तो हम सब अपनी स्कूली पढ़ाई के दौरान ज्वार-भाटे के बारे में कुछ-न-कुछ ज़रूर पढ़ते हैं, लेकिन जैसा कि अक्सर हमारी पाठ्य पुस्तकों के साथ होता है किसी भी विषय की गहराई में जाने के बजाए आधे-अधूरे ज्ञान के साथ छोड़ दिया जाता है हमें। स्कूली शिक्षा में ज्वार-भाटे का अध्ययन इसका एक बहुत ही अच्छा उदाहरण है क्योंकि इस प्राकृतिक घटना में छिपी विभिन्न संभावनाओं को स्कूली किताबों में हम बिल्कुल ही नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

इस लेख की शुरुआत मद्रास विश्वविद्यालय की एक प्रयोगशाला से करते हैं। किस्सा लगभग 40 साल पहले का है। उन दिनों एक शोधछात्र एम. के. चंद्रशेखरन ने एक बित्ते-भर गहरे समुद्र में रहने वाले समुद्री केकड़े पर शोध करते हुए देखा कि ये केकड़े समुद्र में ज्वार के समय समुद्र की ओर मुंह करके तैरते हुए धीरे-धीरे पीछे खिसक कर, खुद को रेत में दबा लेते हैं। और भाटे के समय ये केकड़े निष्क्रिय से पड़े तली के साथ चिपके रहते हैं। हर बार जब ज्वार आने को होता तो केकड़े हरकत में आ जाते थे, और पीछे को खिसकने लगते थे।

चंद्रशेखरन ने समुद्र से पकड़े इन केकड़ों के साथ प्रयोग करते हुए एक हैरतअंगेज़ बात पता लगाई कि मद्रास के समुद्र में जब ज्वार उठता था तब प्रयोगशाला में रखे उनके केकड़े भी पीछे की ओर तैरते हुए खुद को रेत में दबा लेने की कोशिश करते थे! गौर करने लायक बात यह है कि उनकी प्रयोगशाला समुद्र से दो किलोमीटर की दूरी पर थी।

कई दिनों के अवलोकन के बाद यह भी स्पष्ट हुआ कि जिस तरह हर दिन ज्वार 50 मिनट की देरी से शुरू होता है, उसी तरह इन केकड़ों की हलचल में भी रोज़ 50 मिनट का विलंब दर्ज हो रहा था। यानी कि समुद्री ज्वार-भाटे की लय उनके जीवन में समा गई थी। इस प्रयोग का ज़िक्र यहां सिर्फ इसलिए किया जा रहा है ताकि इस बात का अंदाज़ा लग सके कि उथले समुद्रों के जीवन का कितना घनिष्ठ संबंध हो सकता है ज्वार-भाटे के साथ।

क्यों आता है ज्वार?

यह तो सबको मालूम है कि एक नियमित समय अंतराल के बाद समुद्र का जलस्तर बढ़ जाना, और फिर कुछ समय के बाद जलस्तर कम हो जाना, क्रमशः ज्वार और भाटा कहलाते हैं।

न्यूटन द्वारा गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत प्रतिपादित करने के बाद, आकाशीय पिंडों से जुड़ी हुई अन्य बहुत-सी घटनाओं की तरह, पहली बार ज्वार-भाटे की तार्किक व्याख्या भी संभव हो पाई। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार किन्हीं भी दो पिंडो के बीच गुरुत्वाकर्षण बल उन दोनों के द्रव्यमान एवं उनके बीच की दूरी पर निर्भर करता है।* यानी कि गुरुत्वाकर्षण की वजह से पृथ्वी व चांद एक दूसरे को आकर्षित कर रहे हैं, खींच रहे हैं। इस आकर्षण का असर पृथ्वी की विशाल पानी की परत पर चांद की ओर उभार के रूप में दिखाई देता है क्योंकि कोई भी द्रव अपना आकार (अपनी आकृति) आसानी से बदल देता है, विशेष तौर पर ठोस पदार्थों की तुलना में। **

पृथ्वी के अपनी धुरी पर चौबीस घंटों में चक्कर लगाने के कारण उसका कोई एक हिस्सा लगातार चंद्रमा की तरफ नहीं रहता बल्कि हर क्षण चांद के सामने एक नया हिस्सा होता है।

** दो पिंडो की बीच : बल* $\propto \dfrac{\text{पहले पिंड का द्रव्यमान} \times \text{दूसरे पिंड का द्रव्यमान}}{\text{दोनों के बीच की दूरी}^2}$

*** चंद्रमा के खिंचाव की वजह से जहां पृथ्वी के समुद्रों के तल में औसतन 5–10 फुट का असर पड़ जाता है, पृथ्वी का ठोस भाग केवल 15–20 से. मी. ही ऊपर उठता है।*

इसी वजह से पृथ्वी की सतह पर पानी का यह उभार यानी कि ज्वार किसी एक स्थान पर नहीं बना रहता परन्तु जैसे-जैसे पृथ्वी घूमती जाती है, ज्वार लगातार आगे की ओर बढ़ता रहता है।

चांद की तरह सूर्य भी पृथ्वी पर यही प्रभाव पैदा करता है यानी कि ये दोनों आकाशीय पिंड ज्वार के लिए ज़िम्मेदार हैं। अगर तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो चांद सूर्य के बनिस्बत धरती के पानी को ज़्यादा उभार पाता है यानी कि बड़ा ज्वार लाने में सक्षम है। चांद से कई गुना विशाल होने के बावजूद चांद की तुलना में ज़्यादा दूर स्थित होने व अन्य कारणों की वजह से सूर्य उतना प्रभाव नहीं डाल पाता।

यानी ज्वार के बारे में पहली बात तो यह कि ये चांद और सूरज के धरती पर लगने वाले गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से आता है। गुरुत्वाकर्षण बल तो धरती की ठोस सतह, वायुमंडल और जलमंडल सब पर समान रूप से लगता है लेकिन जिस तरह पानी में उभार आता है उसके मुकाबले ठोस सतह काफी कम खिंचती है।

इसलिए सबसे ऊंचा ज्वार तभी आता है जब सूर्य और चांद दोनों एक ही दिशा में हों, जैसा कि हर अमावस्या को होता है। ऐसी स्थिति में ज्वार सबसे ऊंचा होता है और भाटा सबसे नीचा, इसे दीर्घ ज्वार कहते हैं। जब सूर्य और चांद एक दूसरे के समकोण पर हों तो सबसे छोटा ज्वार देखने को मिलता है, उस समय भाटा सबसे बड़ा होता है। इस स्थिति को लघु ज्वार कहते हैं। पृष्ठ 20–21 पर दिए गए चित्रों में 29 दिन के एक ज्वारीय चक्र के साथ-साथ दीर्घ ज्वार व लघु ज्वार की स्थितियों को भी दर्शाया है।

ज्वार-भाटा समुद्र तटीय इलाकों में रहने वाले लोगों के जीवन का अंग है, उन्हें मालूम होता है कि अगर आज ज्वार ठीक बारह बजे आया है तो कल भी ठीक उसी वक्त नहीं आएगा, बल्कि 50 मिनट देरी से आएगा। ऐसा इसलिए क्योंकि पृथ्वी तो अपनी धुरी पर घूम ही रही है, पर चांद भी स्थिर नहीं है। चंद्रमा लगभग 29 दिन में पृथ्वी का एक पूरा चक्कर काटता है इसलिए जब तक पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाती है, चांद थोड़ा आगे खिसक गया होता है। पृष्ठ 22-23 पर दिए गए चित्रों में इसी घटना को विस्तार से समझाने की कोशिश की गई है।

ज्वार दूसरे सिरे पर क्यों?

संभव है कि यहां तक पहुंचते-पहुंचते आपके मन में ये दो सवाल उठ आए हों। पहला कि 24 घंटे में एक बार ज्वार और एक बार भाटा तो समझ में आता है परन्तु असलियत में तो 24 घंटे में दो बार ज्वार आता

29 दिनों का ज्वारीय चक्र: चांद 29 दिनों में धरती के चारों ओर एक चक्कर पूरा करता है। इस पूरे चक्र में सूर्य और चांद की स्थिति से यह तय होता है कि धरती के समुद्र में कब कितना ऊंचा ज्वार उठेगा। इन चित्रों में चांद और सूरज की कुछ स्थितियों को दर्शाया गया है।

चित्र:1 यह अमावस की स्थिति है। सूरज और चांद धरती के एक ही ओर हैं जिससे समुद्र में उठने वाला ज्वार अधिकत्तम ऊंचाई का होता है, और भाटा अपने निम्नतर स्तर पर होता है। यह दीर्घ ज्वार की स्थिति है।

चित्र:2 यह स्थिति अष्टमी की है जब सूरज और चांद का गुरुत्वाकर्षण बल एक-दूसरे के समकोणीय होता है। इस समय ज्वार अपने न्यूनतम स्तर पर होता है तो भाटा अपनी अधिकतम ऊंचाई पर होता है। इस समय लघु ज्वार देखने को मिलता है।

चित्र:3 यह पूर्णिमा की स्थिति है। एक बार फिर ज्वार अपने उच्चतम स्तर पर होता है और भाटा अपने निम्नतर स्तर पर। यहां आपके मन में सवाल उठना चाहिए कि इस स्थिति में आखिर ज्वार क्यों उठता है (वह भी दीर्घ ज्वार) जबकि चांद और सूर्य विपरीत दिशा में गुरुत्वाकर्षण बल लगा रहे हैं।

चित्र:4 एक बार फिर अष्टमी वाली स्थिति निर्मित होती है।

चित्र:5 फिर शुरुआती अमावस वाली स्थिति पर वापस आ गए हैं।

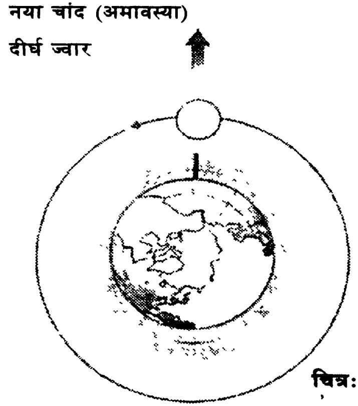

चित्र:1

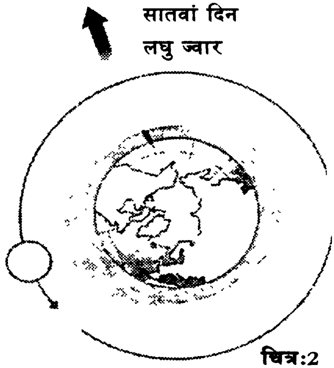

चित्र:2

अट्ठाइसवां दिन
दीर्घ ज्वार

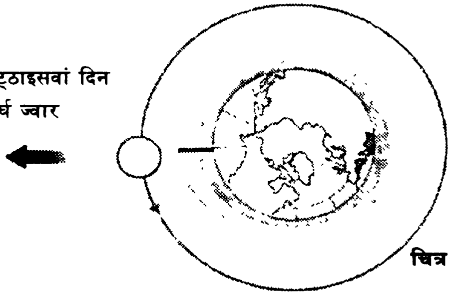

चित्र:5

इक्कीसवां दिन
लघु ज्वार

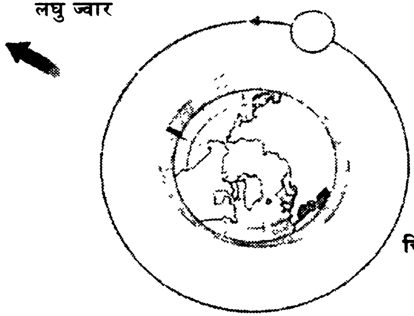

चित्र:4

चौदहवां दिन (पूर्णिमा)
दीर्घ ज्वार

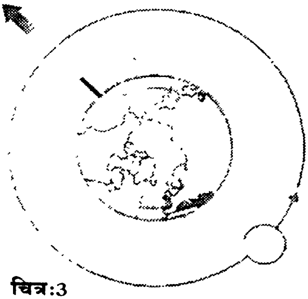

चित्र:3

इन चित्रों में सूर्य नहीं दिखाया गया है लेकिन तीर की दिशा सूर्य की दिशा इंगित कर रही है। पृथ्वी की सतह पर बनाई गई काली रेखा एक स्थान विशेष को प्रदर्शित करती है, हवाई द्वीप समूह। जब यह स्थान सूर्य की सीध में आ जाए तो हमें पता चल जाएगा कि 7 दिन, या 14 दिन, या 21 दिन पूरे हो गए हैं।

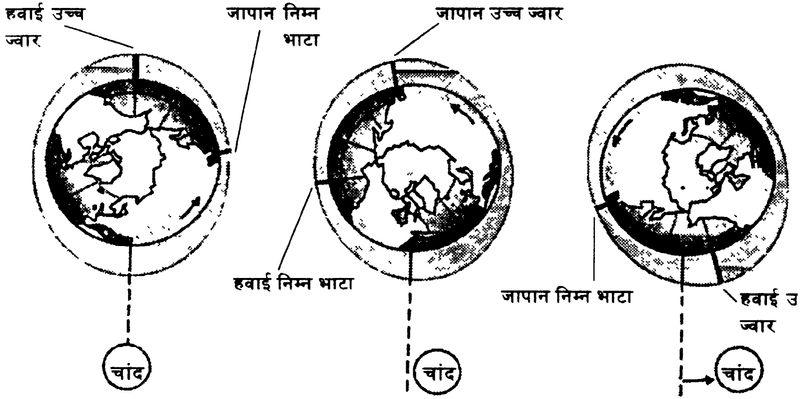

चित्र:1 दोपहर 12 बजे

चित्र:2 शाम 6:12

चित्र:3 रात 12:25

दो बार ज्वार, दो बार भाटा: 24 घंटे 50 मिनट की अवधि में किस तरह दो ज्वार और दो भाटे आते हैं यह दिखाने के लिए यहां हवाई द्वीप और जापान को बतौर उदाहरण लिया गया है। **चित्र:1** में ठीक दोपहर के 12 बजे हवाई द्वीप जो पृथ्वी के चांद से दूर वाले सिरे पर है वहां उच्च ज्वार आया हुआ है तथा जापान में निम्न भाटा है। **चित्र:2** में शाम के 6 बजकर 12 मिनट पर (यानी 12 मिनट की देरी से) हवाई में निम्न भाटा चल रहा है, जबकि जापान में ज्वार अपने उच्चतम उत्थान पर है। **चित्र:3** रात के 12 बजकर 25 मिनट पर हवाई द्वीप पर दूसरी बार ज्वार आया हुआ है। जापान में भी दूसरी बार भाटा चल रहा है। इस बात पर भी गौर

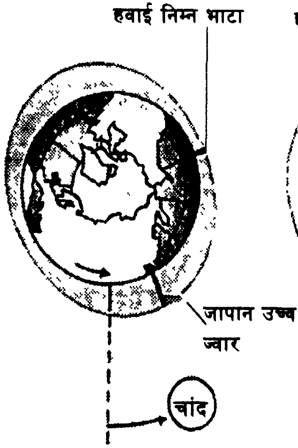

चित्र:4

सुबह 6:37

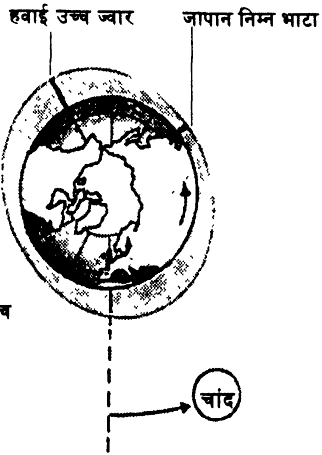

चित्र:5

दोपहर 12:50

करें कि इन बारह घंटों में चांद अपनी दोपहर 12 बजे वाली स्थिति से कुछ आगे की ओर खिसक गया है। **चित्र:4** अगले दिन सुबह 6 बजकर 37 मिनट पर हाल यह है कि हवाई द्वीप पर भाटा है और जापान में ज्वार अपने शबाब पर है। **चित्र:** 5 यह वही स्थिति है जो पिछले दिन दोपहर को थी। अंतर यही है कि समय 12 बजकर 50 मिनट हुआ है, यानी बीती दोपहर के मुकाबले आज हवाई द्वीप पर ज्वार 50 मिनट की देरी से आया है। इसी तरह यही हाल जापान का भी है।
इन चित्रों में हमने केवल चांद के प्रभाव से उत्पन्न ज्वार की चर्चा की है, सूर्य के प्रभाव को नज़रअंदाज़ किया है।

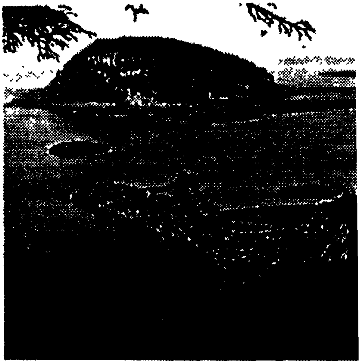

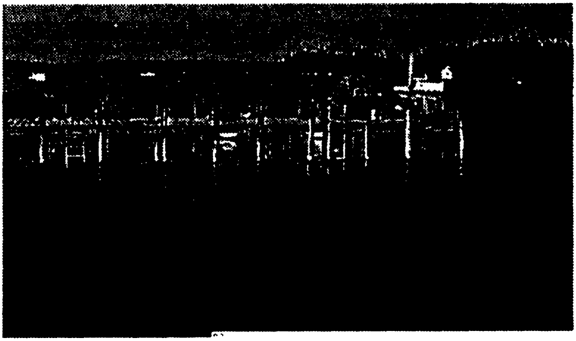

फंडी की खाड़ी में ज्वार और भाटे के दो दृश्य। विशेष परिस्थितियों की वजह से यहां पर इन दोनों में 60 फीट तक का अंतर देखने को मिलता है।

ज्वार और भाटे की स्थिति में स्पष्ट अंतर प्रदर्शित करते हुए दो और चित्र।

है और दो बार भाटा। ऐसा क्यों?

और दूसरा सवाल कि पृथ्वी का जो हिस्सा चांद की ओर है वहां का पानी तो गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से ऊपर उठ गया; पर सब पुस्तकों में तो यही लिखा होता है और चित्रों में दिखाया जाता है कि पृथ्वी के दूसरी ओर, यानी कि जो हिस्सा चांद से दूर है, वहां भी पानी ऊपर उठ जाता है। इस लेख में भी अभी तक जितने चित्र बनाए गए हैं उनमें भी ऐसा ही दिखाया गया है। यह कैसे संभव है?

17वीं सदी के पहले भी लोगों ने यह अंदाज़ा तो लगा लिया था कि धरती का जो हिस्सा चांद के सामने होता है, समुद्र में ज्वार वहीं आता है। लेकिन धरती के वे इलाके जो चांद से विपरीत हिस्से में मौजूद हैं, वहां ज्वार क्यों आते हैं इस बारे में कोई समाधानकारी जवाब तब नहीं था।

इन दोनों सवालों के हल ढूंढने से पहले यह समझना होगा कि चांद पृथ्वी का चक्कर नहीं काटता बल्कि पृथ्वी व चंद्रमा दोनों पृथ्वी-चांद तंत्र के गुरुत्व केन्द्र के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। पृथ्वी चंद्रमा की तुलना में बहुत ही अधिक विशाल है (पृथ्वी का द्रव्यमान चांद से लगभग 80 गुना है) इसलिए पृथ्वी-चांद तंत्र का गुरुत्व केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र के अत्यन्त नज़दीक है; पृथ्वी के केन्द्र से लगभग 4700 किमी दूर, यानी कि पृथ्वी की सतह से तकरीबन 1700 किमी अंदर।

दूसरा, इस घटना को केवल गुरुत्वाकर्षण बल के सहारे नहीं समझा जा सकता। पृथ्वी चूंकि पृथ्वी-चंद्रमा तंत्र के गुरुत्व केन्द्र के इर्द-गिर्द घूम रही है इसलिए पृथ्वी की सतह के पानी पर अपकेन्द्रीय बल (Centrifugal Force) भी लग रहा है। एक सिरे पर पत्थर बांधे हुए रस्सी को घुमाते वक्त जिस तरह से पत्थर छिटक कर दूर जाने की कोशिश करता है, वैसा ही प्रभाव धरती की सतह पर मौजूद जल भंडार पर भी पड़ता है। रस्सी जितनी लंबी होगी उतना ही ज़्यादा लगेगा यह बल।

आइए देखें कि बिंदु A, B व C पर इन दोनों बलों का कुल परिणामी प्रभाव क्या होता है। देखिए चित्र एवं तालिका अगले पृष्ठ पर।

पृथ्वी का बिंदु 'A' चांद से सबसे करीब है इसलिए उस पर गुरुत्वाकर्षण बल सबसे अधिक लगेगा। यह बिंदु A तंत्र के गुरुत्व केन्द्र के काफी नज़दीक है इसलिए वहां पर अपकेन्द्रिय बल कम लगेगा, परन्तु वह होगा चांद के गुरुत्व बल की ही दिशा में। इन दोनों बलों का प्रभाव यह होगा कि चांद की ओर पानी अंडाकार आकृति बनाते हुए उठ आएगा और उस तरफ ज्वार की स्थिति बनेगी।

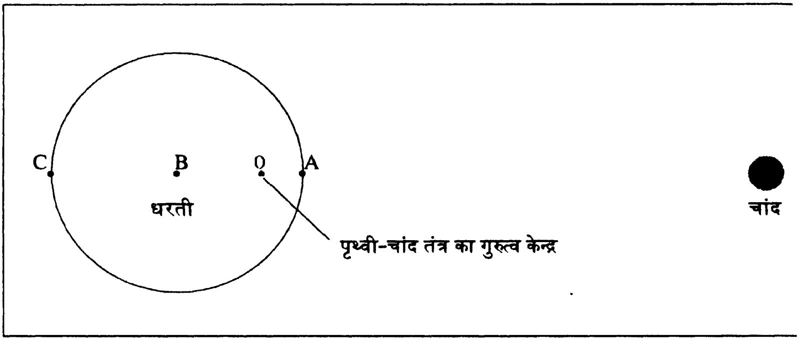

यहां दिया गया रेखाचित्र प्रतीकात्मक है। इसमें धरती, चांद के अलावा धरती पर कुछ बिन्दु दर्शाए गए हैं। बिन्दु 0 धरती-चांद तंत्र का गुरुत्व केन्द्र है जिसके इर्द-गिर्द ये दोनों पिंड घूमते हैं। 'A' वह बिन्दु है जो चांद से सबसे करीब है। बिन्दु 'C' चांद से सबसे अधिक दूरी वाला बिन्दु है और बिन्दु 'B' पृथ्वी का केन्द्र दर्शाता है। नीचे दी गई तालिका में बिन्दु 'A', 'B' और 'C' पर कार्यरत गुरुत्व व अपकेन्द्री बलों की तुलना करके ज्वार-भाटे को समझाने का प्रयास किया गया है। तीरों की लंबाई बल की एकदम सटीक मात्रा नहीं दर्शाती।

बल	बिन्दु 'C' पर	बिन्दु 'B' पर	बिन्दु 'A' पर
गुरुत्व बल	→	→→	→→→
अपकेन्द्री बल	←←←←←	←←	→
परिणामी बल	←←←←	शून्य	→→→→

बिंदु B पृथ्वी का केन्द्र बिंदु है। यहां पर बिंदु 'A' की तुलना में गुरुत्वाकर्षण बल कम लग रहा है परन्तु अपकेन्द्रीय बल ज़्यादा। दोनों का मान लगभग बराबर है यहां पर, लेकिन ये विपरीत दिशा में लग रहे हैं इसलिए एक दूसरे को संतुलित कर देंगे।

पृथ्वी पर चांद की विपरीत दिशा में मौजूद बिंदु 'C' पर गुरुत्वाकर्षण बल और भी कम लगेगा चूंकि चांद से उसकी दूरी सबसे ज़्यादा है। परन्तु इसी बिंदु C पर अपकेन्द्रिय बल ज़्यादा

लगेगा क्योंकि यह तंत्र के गुरुत्व केन्द्र यानी वह बिंदु जिसके इर्द-गिर्द पृथ्वी और चांद दोनों चक्कर लगा रहे हैं, से ज़्यादा दूर है। यहां पर भी ये दोनों बल एक दूसरे के विपरीत दिशा में हैं परन्तु अपकेन्द्रीय बल गुरुत्वाकर्षण बल से अधिक है, इसलिए इन दोनों का परिणामी बल जो अपकेन्द्रीय बल की दिशा में होगा, पानी को चांद के विपरीत दिशा में ऊपर को उठा देगा।

यही वजह है कि ज्वार न सिर्फ पृथ्वी पर उस तरफ आता है जिस तरफ चांद हो बल्कि उसकी उलटी तरफ का समुद्र भी ऊपर को उठ जाता है। और इसीलिए पृथ्वी पर स्थित समुद्रों में किसी भी एक जगह 24 घंटे में दो बार ज्वार आता है और दो बार भाटा। एक ही जवाब से दोनों सवाल हल हो गए!

कितना ऊंचा ज्वार

ज्वार पर इतनी चर्चा के बाद एक दो बातें और बच जाती हैं जैसे चांद के बल के बावजूद किसी समुद्र या खाड़ी में कितनी ऊंचाई वाला ज्वार आएगा, यह तय होता है कुछ भौगोलिक कारकों से। जैसे कोई खाड़ी या सागर कितना गहरा या उथला है, संकरा है या चौड़ा है, किसी खाड़ी या सागर में समुद्री पानी की आवक-जावक की लय (रिदम), समुद्री जलधाराओं से आने वाला और जाने वाला पानी, समुद्र तटीय इलाका कैसा है, हवा के दबाव में कितना परिवर्तन हो रहा है, समुद्र या खाड़ी में चलने वाली हवाएं आदि वो सब कारक हैं जो ज्वार-भाटे को नियंत्रित करते हैं। जिसकी वजह से दुनिया के सागरों, समुद्रों, खाड़ियों में ज्वार-भाटे में भिन्नता दिखाई देती है।

अटलांटिक महासागर के इलाके में रोज़ दो समान ऊंचाई के ज्वार और दो लगभग समान ऊंचाई के भाटे आते हैं। ऐसे ज्वार को अर्ध-दैनिक ज्वार (Semidiurnal Tide) कहा जाता है।

प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर के इलाकों में एक चंद्र दिवस (24 घंटे 50 मिनट) में दो ज्वार लगभग बराबर ऊंचाई के आते हैं तथा दो भाटे असमान ऊंचाई के आते हैं। वैसे इसका उलट भी हो सकता है यानी दो समान ऊंचाई के भाटे और दो असमान ऊंचाई के ज्वार। इस तरह के ज्वार को मिश्रित ज्वार (Mixed Tide) कहा जाता है।

मेक्सिको की खाड़ी, चीन सागर तथा कुछ और इलाकों में (Diurnal Tide) ज्वार आते हैं। यानी एक चंद्र दिवस में सिर्फ एक ऊंचा ज्वार और एक निम्न भाटा। आमतौर पर 6 घंटे 12 मिनट के अंतराल से दिखने वाले ज्वार–*भाटा–ज्वार*–भाटा इस क्रम में से बीच वाला *'भाटा–ज्वार'* यहां लगभग गायब हो जाता है। शायद

सूरज का ज्वार छोटा क्यों?

ज्वार-भाटे के संबंध में कक्षा में एक और सवाल उठ सकता है जो थोड़ा पेचीदा है – ऐसा क्यों है कि इस घटना पर चांद का प्रभाव ज़्यादा होता है और सूर्य का कम? यह सही है कि चांद की तुलना में सूर्य बहुत ज़्यादा दूर है परन्तु दूसरी ओर सूर्य चांद की अपेक्षा अत्यन्त विशालकाय है। धरती से चांद और सूरज की दूरी क्रमशः 3.84 लाख किलोमीटर और 15 करोड़ किलोमीटर है। दूसरी ओर सूर्य का द्रव्यमान चांद से तकरीबन ढाई करोड़ गुना ज़्यादा है।

अगर केवल गुरुत्वाकर्षण को ही देखा जाए तो चांद के मुकाबले सूर्य पृथ्वी पर लगभग 186 गुना ज़्यादा बल लगाता है परन्तु फिर भी ज्वार के मामले में कमज़ोर पड़ जाता है। इस प्रश्न को हल करने के लिए भी हमें उसी तरह से पृथ्वी के विभिन्न बिंदुओं पर लग रहे बलों का विश्लेषण करना होगा जैसे हमने पृथ्वी-चांद के तंत्र के लिए किया था। इस बार हमें पृथ्वी-सूर्य तंत्र को जांचना होगा।

इस वक्त हम पृथ्वी की सतह के केवल दो बिंदुओं की चर्चा करेंगे – सूर्य के नज़दीक का A, व सूर्य से दूर का C ये दोनों बिंदु सूर्य से इतनी दूर हैं कि दोनों जगह पर गुरुत्वाकर्षण की वजह से खिंचाव में बहुत ज़्यादा अंतर नहीं है। सामने दी गई तालिका से भी यह बात स्पष्ट होती है।

परन्तु जहां पृथ्वी-सूर्य तंत्र के गुरुत्व केन्द्र की बात आती है, तो अब मामला एकदम बदल जाता है। पृथ्वी-चांद तंत्र का गुरुत्व केन्द्र पृथ्वी के अंदर था परन्तु पृथ्वी-सूर्य तंत्र का गुरुत्व केन्द्र सूर्य के अंदर है जिसके इर्द-गिर्द ये दोनों पिंड घूम रहे हैं। यानी कि इस गति के कारण पृथ्वी पर स्थित दोनों बिंदुओं A व C पर अपकेन्द्रीय बल बाहर की दिशा में लगेगा, और उसमें बहुत ज़्यादा अंतर नहीं होगा। यही बात तालिका में दर्शाई गई है।

इसकी वजह इन सागरों की भौगोलिक बनावट से जुड़ी है जिससे यहां ज्वार का पानी जल्दी से वापस नहीं लौट पाता, और इस वजह से बीच का एक ज्वार और भाटा लगभग खत्म हो जाता है।

आखिरी बात यह कि हमारे सौर्य मंडल में बुध और शुक्र ग्रह के सिवाय सभी के पास उपग्रह हैं। कुछ के पास तो उपग्रहों की फौज है लेकिन जिस तरह का ज्वार धरती-चांद के तंत्र में, धरती पर देखने को मिलता है वैसा ज्वार सौर्य मंडल में दुर्लभ है। अभी भी ज्वार के बारे में शोधकार्य चल रहे हैं, पानी के उतार-चढ़ाव के लिए

अब तालिका में परिणामी बल की स्थिति देखनी होगी। बिंदु A पर गुरुत्वाकर्षण बल सूर्य की ओर है, परन्तु अपकेन्द्रीय बल उसके विपरीत दिशा में है। गुरुत्व बल अपकेन्द्रीय बल से थोड़ा ज़्यादा है इसलिए इस बिंदु पर कुल मिलाकर सूर्य की ओर बल लगेगा। इस परिणामी बल की वजह से समुद्री जल सूर्य की ओर थोड़ा उठ जाता है।

बिंदु C पर भी बलों की दिशाओं की यही स्थिति है परन्तु यहां गुरुत्व बल कुछ कम हो गया है, अपकेन्द्रीय बल कुछ ज़्यादा है जिससे कुल मिलाकर अपकेन्द्रीय बल गुरुत्व बल से अधिक है। परिणामी बल सूर्य की विपरीत दिशा में भी एक छोटा उभार पैदा करता है।

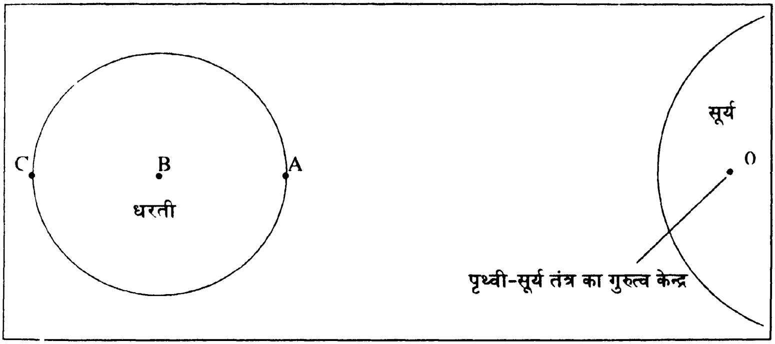

चित्र में धरती-सूर्य के आकार व दूरियां अनुपातिक नहीं हैं।

बल	बिन्दु 'C' पर	बिन्दु 'A' पर
गुरुत्व बल	→→→→→→→	→→→→→→→→
अपकेन्द्री बल	←←←←←←←←	←←←←←←←
परिणामी बल	←	→

संतुलन बिंदु यानी गुरुत्व केन्द्र

धरती और चांद एक दूसरे को अपने गुरुत्वाकर्षण बल से आकर्षित कर रहे हैं। चूंकि इन दोनों की संहतियां भिन्न-भिन्न हैं इसलिए संहतियों का गुरुत्व केन्द्र बड़ी संहति वाले पिंड के आसपास होता है। इस बात को झूले के उदाहरण से भी समझा जा सकता है।

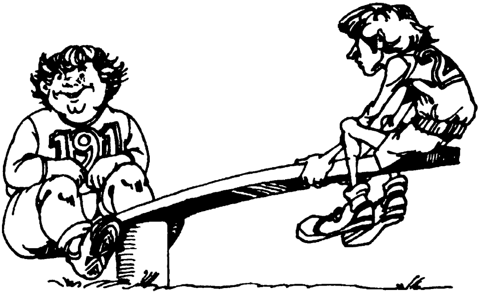

मान लीजिए किसी मैदान में लकड़ी की एक खूंटी पर एक लंबा-सा पटिया लगा हुआ है। अगर वज़न में काफी अंतर वाले दो लड़कों को इसे संतुलित करना है तो बराबर दूरी पर बैठने से काम नहीं चलेगा। पटिए को खूंटी पर संतुलित करने के लिए ज़्यादा वज़न वाले लड़के को खूंटी के एकदम करीब बैठना पड़ेगा और दुबले लड़के को खूंटी से काफी दूर। अगर दोनों के वज़न में अंतर और भी अधिक हो तो हो सकता है ज़्यादा वज़न वाले को पटिए पर खूंटी के लगभग ऊपर ही बैठना पड़े।

धरती-चांद के तंत्र के साथ यही होता है। बस थोड़ा-सा फर्क यही है कि खूंटी यानी गुरुत्व केन्द्र धरती के केन्द्र से लगभग 4700 किलोमीटर की दूरी पर है जिसके चारों ओर ये दोनों चक्कर लगा रहे हैं। इस अदृश्य झूले पर धरती का जो हिस्सा चांद के सामने होता है वहां पर चांद का गुरुत्वाकर्षण ज़्यादा लगता है, इसलिए समुद्र में ज्वार उठते हैं। धरती का वह हिस्सा जो चांद से दूर है, वहां चांद का गुरुत्वाकर्षण बल कम लगता है परन्तु वहां केन्द्र से दूर भागने की प्रवृति ज़्यादा दिखती है। इसलिए उस ओर भी एक ज्वार उठता है।

ज़िम्मेवार कारकों की सूक्ष्मता से पडताल हो रही है। साथ ही ज्वार-भाटे और समुद्री जीवों के सहसंबंध पर भी रोचक शोध हो रही है। यकीनी तौर पर इन सबकी वजह से हमारी समझ और भी पुख्ता होगी।

विक्रम चौरे: होशंगाबाद में एक स्कूल का संचालन करते हैं। विज्ञान लेखन में रुचि रखते हैं।

दूर जाता हुआ चांद

चांद के गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव सिर्फ ज्वार-भाटे के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए। इस बल से ज्वार तो आते ही हैं पर साथ ही ज्वार के कारण धरती की अपने अक्ष पर घूमने की गति भी प्रभावित होती है। नई तकनीकों के इस्तेमाल से यह पता चला है कि पृथ्वी की अपने अक्ष पर घूमने की गति धीरे-धीरे कम होती जा रही है और चांद धरती से लगातार दूर होता जा रहा है।

लाखों साल पुराने नॉटिलॉइड्स और कोरल के जीवाश्म; जो अपनी हर रोज़ की या हर महीने की वृद्धि में मौसमी विभिन्नता दर्शाते हैं; इनके अध्ययन से यह भी मालूम हुआ है कि करोड़ों साल पहले चांद धरती के काफी करीब होता था – आज के मुकाबले। और उन दिनों धरती भी अपने अक्ष पर काफी तेज़ी से घूमती थी। गणनाओं से यह पता चला है कि प्रति 100 साल में धरती की अक्षीय गति एक सेकेंड के एक हज़ारवें हिस्से के बराबर धीमी हो जाती है। एक बिलियन यानी 1 अरब साल पहले धरती अपने अक्ष पर आज के मुकाबले काफी तेज़ी से घूम रही थी, फलस्वरूप अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा करने में उसे लगभग 22 घंटे का समय लगता था। यानी उस समय एक दिन सिर्फ 22 घंटे का होता था। आज धरती को अपने अक्ष पर एक पूरा चक्कर लगाने में 24 घंटे का समय लगता है, तो कुछ लाख साल बाद 24 घंटे और कुछ मिनटों का समय लगा करेगा।

यदि धरती ऐसी ही धीमी होती गई तो भविष्य में क्या होगा? एक अनुमान यह है कि धरती अपने अक्ष पर लगातार धीमी होती जाएगी और एक स्थिति ऐसी आएगी कि धरती अपने अक्ष पर एक चक्कर उतने ही दिनों में पूरा करेगी जितने दिनों में चांद धरती का एक चक्कर पूरा करेगा। इस स्थिति में धरती का एक ही हिस्सा हमेशा चांद के सामने होगा, जैसा कि आज हम धरती से चांद का सिर्फ एक ही हिस्सा देख पाते हैं। (हमारे सौर्य मंडल में अभी तक प्लूटो और उसके उपग्रह चेरॉन ने इस स्थिति को प्राप्त किया है।) लेकिन फिक्र मत कीजिए ऐसा होने में अरबों साल लग जाएंगे।

– विभिन्न स्रोतों से संकलित

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछले अंक में कई वर्गों से बनी एक आकृति दी गई थी और शर्त यह थी कि इसके सभी वर्गों को आपस में जुड़ी तीन सरल रेखाओं से इस प्रकार काटना है कि सभी वर्ग किसी-न-किसी रेखा से कट जाएं या छू जाएं।

इस सवाल के काफी सारे जवाब मिले हैं और हमारे पाठकों ने विभिन्न तरीकों से वर्गों को काटा है। उन सभी जवाबों को यहां दे पाना संभव नहीं है इसलिए यहां सिर्फ एक ही तरीका दे रहे हैं।

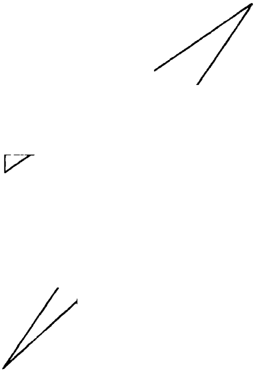

इस सवाल का सही जवाब देने वाले पाठकों के नाम इस प्रकार हैं: शोभा वाजपेई, हरदा; अलका कालरा, नई दिल्ली; रुकमा चौधरी, कुडली, ज़िला जयपुर; सरोज जांगिड़, भिरानी, ज़िला हनुमानगढ़; रमेशचंद्र, नलवा, ज़िला हिसार; नीलम टोप्पो, बिलासपुर; पूर्वा उमरेकर, भोपाल; टीकाराम पटेल, जांजगीर चांपा; गुरुप्रताप कालरा, आगरा

मौका आपके लिए भी

यदि ज़रा सिर खुजलाइए स्तंभ के लिए आपको कोई सिर खुजाने वाला सवाल ध्यान आ रहा हो तो आप उसे हमारे पास भेज सकते हैं। सवाल भेजते समय उसके कुछ संभावित जवाब भी ज़रूर भेजिए। अगर हमने आपका सवाल चुना तो उसके साथ आपका नाम भी प्रकाशित किया जाएगा।

आदिमाता की खोज में

टी. वी. वकटश्वरन

अपने पुरखों के बारे में मालूमात करने की एक स्वाभाविक इच्छा सभी में होती है। आप अपने परिवार के वंशवृक्ष का कितना इतिहास जान पाते हैं ..... दो सौ साल .... पांच सौ साल .... बहुत हुआ तो हज़ार-दो हज़ार साल का। लेकिन यहां तो मामला ही कुछ और है। यहां तो उस मां का पता लगाया जा रहा है जिसकी मानव प्रजाति संतान है। आप क्या सोचते हैं – कौन होगी वह मां..... कैसी होगी..... कहां रहती थी?

भोजपत्रों के आधार पर हम आपको आपके उन पूर्वजों के विषय में बता सकते हैं, जिन्होंने इस मंदिर को भेंट दी थी, ऐसा कहकर पुरी के पंडे भोले-भाले श्रद्धालुओं को गुमराह करते हैं। हमारे पूर्वजों के मूल के बारे में यह सच है या झूठ, यह विज्ञान अधिक तार्किक ढंग से समझा सकता है। आधुनिक विज्ञान यह मानता है कि हम एक अत्यंत सफल स्त्री की संतानें हैं जो अफ्रीका के निचले सहारा में 1.5 लाख वर्ष पूर्व रहती थी।

पूर्वज पूजा साधारणतः सभी संस्कृतियों में एक आम बात है – चाहे हिन्दुओं में श्राद्ध-तर्पण हो या ईसाइयों द्वारा कब्रिस्तान में मोमबत्ती जलाना, हर संस्कृति में पूर्वजों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के अपने-अपने तरीके हैं।

हिन्दुओं में गोत्र की संकल्पना वंश परम्परा का ही रूप है। यह माना जाता है कि एक ही गोत्र के सब लोग एक ही ऋषि की संतान हैं, एडम और ईव की संकल्पना भी मानव समाज की रचना की ही कहानी है।

हाल तक मानवजाति के पूर्वजों

विषयक विचारों का आधार पौराणिक कथाएं होती थीं। मानववंश के मूल का पता लगाने के लिए अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ हुए। मुख्यतः दो बातों ने इस कार्य को वैज्ञानिक आधार पर गति प्रदान की। सर्वप्रथम नृवंशशास्त्र* के द्वारा विभिन्न प्रजातियों की समानताओं और भिन्नताओं की खोज की गई। पुरातनकाल की बची हुई हड्डियों से इस अध्ययन में मदद मिली। दूसरे, डारविन के सिद्धांत ने प्रतिपादित किया कि मानव प्रजातियों के उद्‌विकास (Evolution) का अध्ययन वैज्ञानिक तरीके से किया जाना चाहिए, न कि नाटकीय प्रथम दर्शन या प्रथम रचना के रूप में।

बिखरे सूत्र समेटना

फिर भी 1940 के दशक में किए गए अवशिष्ट अस्थियों के अध्ययन एक हद तक ही विश्वसनीय थे। पुरात्व-शास्त्रीय खुदाई में प्राप्त अवशिष्टों की कार्बनडेटिंग पद्धति से समय का कहीं ज़्यादा बेहतर अनुमान लगा पाना संभव हुआ। उसके पूर्व 20 वीं सदी के आरंभ में यूरोप में पाई गई नियेंडरथल मानव अस्थियों को प्रथम विश्व युद्ध में मृत सैनिकों की अस्थियां मान लिया गया था। किन्तु अब हम जानते हैं कि नियेंडरथल के अवशेष कम-से-कम एक लाख साल पुराने हैं।

ऐसे अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि मानव प्रजाति दस लाख वर्ष पूर्व की है, जब आदिमानव प्रकट हुआ था जो सीधा खड़ा होकर चल सकता था तथा छोटे-मोटे हथियारों का उपयोग कर सकता था।

आधुनिक मानव से सर्वाधिक साम्य रखने वाले आदिमानव की सबसे पुरानी अस्थियां 4 लाख वर्ष पुरानी हैं। यह संपूर्ण संभाव्यता के साथ ज्ञात है कि आदिमानव नियंत्रित रूप में अग्नि का उपयोग करता था तथा सीधे दो पैरों पर चल सकता था। इस प्राणी को होमो इरेक्टस कहा जाता है – इरेक्टस का अर्थ है जो सीधा खड़ा हो सके। आधुनिक मानव प्रजाति 'होमो इरेक्टस' के भाई-बंधु हैं अर्थात हमारे पूर्वज एक ही हैं।

यद्यपि हम आधुनिक मानव प्रजाति का उद्‌विकास समझ सकते हैं, किन्तु फिर भी आधुनिक मानव का उद्‌गम (मूल) एक रहस्य ही था। क्या समस्त मानवों का उद्‌गम एक ही स्थान पर हुआ या भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक ही काल में?

आधुनिक मानवों की त्वचा के रंग तथा शरीर की बनावट में स्पष्ट भिन्नताएं हैं, इनका वर्गीकरण नीग्रो, एशियाटिक, कॉकेशियन, मंगोलॉयड

** इथनोलॉजी, जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया जाता है।*

इन नामों से किया गया है। प्रश्न यह है कि क्या ये प्रजातीय भिन्नताएं दिखने भर की हैं या क्या इन प्रजातियों का उद्‌विकास अलग-अलग हुआ? विभिन्न खुदाइयों एवं अध्ययनों के बावजूद यह प्रश्न एक अनसुलझा रहस्य है।

सोलोमन की दुविधा तथा जेनेटिक इंजीनियरिंग

बायबल में एक कहानी है... एक समय इज़राइल के शासक सोलोमन के सामने एक समस्या उपस्थित हुई। दो महिलाएं एक ही बच्चे पर अपना बच्चा होने का दावा कर रही थीं तब सोलोमन के मन में एक विचार आया और उसने अपने सैनिकों को बुलाकर कहा, "इस बच्चे के दो टुकड़े करके आधा-आधा दोनों को दे दो।" यह सुनकर असली मां विलाप करने लगी तथा राजा से बोली, "इस निर्णय को उलट दो, यद्यपि यह बच्चा मेरा है फिर भी मरने की अपेक्षा यदि यह उस स्त्री के पास जीवित रहता है तो बेहतर ही है।" सोलोमन ने असली मां को पहचान लिया तथा बच्चा उसे सौंपकर ढोंगी मां को अच्छी डांट पिलाई।

आज यदि इस प्रकार का कोई प्रकरण न्यायालय में आता है तो न्यायाधीश को ऐसी चाल का इस्तेमाल करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। वे किसी अच्छी जैव-तकनीक प्रयोगशाला में (भारत में ऐसी प्रयोगशालाएं कम ही हैं) जा सकते हैं तथा बच्चे के डी.एन.ए. तथा दावेदारों के डी.एन.ए. का तुलनात्मक परीक्षण कर सही मातृत्व का पता लगा सकते हैं।

ऐसा तो हम परियों की कहानियों में पढ़ते हैं कि एक जादूगर की जान सात समुद्र पार, सात पहाड़ों के पार बसी है, मगर विज्ञान ने यह बता दिया है कि दरअसल जीवन का रहस्य अद्वितीय रासायनिक विशाल अणुओं (मेक्रो-मॉलेक्यूल्स) में हैं।

हमारी पांच उंगलयिां हैं, और यह कि नाक दोनों आंखों के बीच स्थित है और कि आपके बाल घुंघराले हैं – यह सब जानकारी कोशिका के केंद्रक के भीतर डी.एन.ए. में रासायनिक संकेतों के एक पैटर्न के रूप में मौजूद है। मानव कोषिका के न्यूक्लियस में 23 जोड़े गुणसूत्र यानी क्रोमोसोम होते हैं, जो अपने आप में और कुछ नहीं – बस डी.एन.ए. के बड़े बड़े टुकड़े हैं जिन्हें मेक्रोमोलेक्यूल भी कहते हैं। क्रोमोसोम के विशिष्ट लंबाई के हिस्से जीन्स हैं। जीन्स में उपस्थित रसायनों की व्यवस्था बच्चे के कई अंग-प्रत्यंग (फीचर्स) तय करती है।

महिलाएं जब नवजात शिशु को देखने जाती हैं तो कहती हैं 'इसकी नाक तो मां के समान है किन्तु जब वह मुस्कुराता है तब पिता की याद दिलाता है'। हां, यह सही हो सकता

है, मां-बाप दोनों के गुण बच्चे में इसलिए आते हैं क्योंकि बालक की अनुवांशिक सामग्री (जेनेटिक मेटेरियल) मां और बाप दोनों की अनुवांशिक सामग्री के योग से बनती है। पिता के बीजाणु में 23 गुणसूत्र होते हैं और मां के अंडाणु में 23 गुणसूत्र। हालांकि ये दोनों यानी बीजाणु और अंडाणु पूर्ण विकसित कोशिकाएं होती हैं, उनमें आवश्यकता से केवल आधे गुणसूत्र होते हैं। निषेचन के समय 23 गुणसूत्र पिता से एवं 23 गुणसूत्र माता से आते हैं; और इस प्रकार संतान की कोशिका में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं।

चूंकि बच्चे में मां और बाप दोनों से आधे-आधे गुणसूत्र आते हैं इसलिए बच्चे में मां और बाप दोनों के गुण हो सकते हैं परन्तु किसी भी बच्चे में केवल मां या पिता के पूरे-पूरे गुण नहीं हो सकते।

चूंकि बच्चे का जेनेटिक मेटीरियल मां और बाप का मिश्रण होता है, इसलिए उसम दानों की ही समानताए प्रदर्शित होती हैं। पितृत्व एवं पूर्वजों का निर्धारण करने के लिए जेनेटिक पैटर्न के उपयोग की चर्चा सर्वप्रथम 1970 के दशक में लाइनस पॉलिंग तथा एमिली ने की थी। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि बालक का जेनेटिक पैटर्न केवल मां-बाप से ही नहीं मिलता वरन् चचेरे भाई-बहन, दादा-दादी, नाना-नानी से भी मिलता है। इसलिए जीवशास्त्र पर आधारित वंशवृक्ष वैज्ञानिक विधि से बनाया जा सकता है। सन् 1967 में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एलन विल्सन एवं विन्सेंट ने इस विधि की खोज की – उन्होंने वंशवृक्ष बनाने के लिए पहली बार अनुवांशिकीय जानकारी का उपयोग किया।

इसी आधार पर हाल ही में भारत में भी प्रेमानंद नामक एक साधु को एक लड़की के साथ बलात्कार का दोषी करार देकर दंडित किया गया। वैज्ञानिकों ने उस व्यक्ति, पीड़ित लड़की एवं उनके संसर्ग से जन्मे बालक के डी.एन.ए. के परीक्षण से सिद्ध किया कि वही उस बालक का जीवशास्त्रीय पिता है।

हूबहू मां के समान

तमिल भाषा में एक कहावत है जिसका हिन्दी अर्थ है 'जैसा सूत वैसा कपड़ा' अर्थात जैसे मां के लक्षण वैसे बच्चे के। या एक दूसरी कहावत है – जैसी खान वैसी मिट्टी।

एक बार प्रसिद्ध साहित्यकार, वक्ता एवं विचारक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के पास एक अभिनेत्री आई और उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा ताकि उनकी संतान शॉ जैसी बुद्धिमान और अभिनेत्री जैसी सुन्दर हो। तुरन्त शॉ ने जवाब दिया, "यदि दुर्भाग्यवश

इसका विपरीत हो गया तो?"

यह तो महज किस्मत की ही बात है कि किसी बालक के गाल पर मां के समान गड्ढे पड़ते हैं, या वह पिता के समान घुंघराले बाल लेकर पैदा होता है, यह सब तो अनुवांशिक बाजीगरी है।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में उपस्थित मायटोकोन्ड्रियल डी. एन. ए. केवल मां से ही बालक को प्राप्त होता है। मायटोकोन्ड्रिया को सेल का पावर हाऊस कहा जाता है। यह कोशिका के केन्द्र से बाहर होता है और अंडाणु में उपस्थित रहता है तथा अंडाणु के माध्यम से निषेचित कोशिका में चला जाता है। इस प्रकार मायटोकोन्ड्रिया में जो डी.एन.ए. उपस्थित रहता है वह केवल मां से ही मिलता है, जबकि कोशिका के केन्द्रक में मौजूद डी.एन.ए. में माता और पिता दोनों की समान भागीदारी होती है।

मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए.

इस खोज ने मानव प्रजाति के उद्विकास एवं पूर्वजों के अध्ययन में बहुत बड़ा योगदान दिया है। गुणसूत्र में उपस्थित डी.एन.ए. मां-बाप दोनों से आता है तथा जिसमें प्रत्येक पीढ़ी के साथ बदलाव होते रहते हैं। लेकिन इसके विपरीत मायटोकोन्ड्रियल डी. एन.ए. मां से सीधा बच्चे में आता है। केवल अटकल पच्चू (रेन्डम) परिवर्तन ही इस क्रम को थोड़ा बहुत बदलते हैं। परिणाम-स्वरूप यह तय कर पाना संभव हो पाता है कि विभिन्न समूह एक-दूसरे से कितने करीबी तौर पर संबंधित हैं। मां से प्राप्त मायटो-कोन्ड्रियल डी.एन.ए. उसी तरह होगा जैसा नानी तथा मां की बहिनों और चचेरी बहिनों में पाया जाता है। इसलिए मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. से मातृपक्षीय वंशवृक्ष वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया जा सकता है।

1986 में केन, विल्सन व मार्क स्टोनकिंग ने मां के डी. एन. ए. की तुलना के आधार पर मानवजाति के आनुवंशिक इतिहास का अध्ययन आरंभ किया। उन्होंने 147 गर्भवती स्त्रियों से इस प्रोजेक्ट में सहयोग का आह्वान किया। बच्चे का जन्म होने पर उसकी गर्भनाल (प्लेसेंटा), जो मायटोकोन्ड्रियल डी. एन. ए. से परिपूर्ण होती है, उसे लेकर सुरक्षित रख लिया जाता था। उसमें से मां का मायटो-कोन्ड्रियल डी. एन. ए. निकालकर उसकी तुलना की गई। कुछ माताएं यूरोपीय मूल की थीं, कुछ काली, कुछ एशिया की। केन के साथियों ने न्यू गिनी एवं ऑस्ट्रेलिया की आदिवासी माताओं के गर्भनाल भी एकत्रित किए और इन सबके मायटोकोन्ड्रियल डी. एन. ए. का विश्लेषण कर तुलना की गई। आश्चर्यजनक परिणाम तो यह था कि सारे ही मायटोकोन्ड्रियल

डी. एन. ए. प्रमुखत: अफ्रिकन मूल के निकले। इस प्रकार इस अध्ययन ने यह इंगित किया कि आधुनिक मानव का आरंभ अफ्रीका में हुआ और हमारी सर्वप्रथम पूर्वज मां एक अफ्रीकी थी।

हम सब नीग्रो हैं!

मानव वैज्ञानिकों ने आधुनिक मानव की उत्पत्ति पर काफी विचार विमर्श किया और 1980 के मध्य तक दो परिकल्पनाएं उभरकर सामने आईं –

प्रथम – बहुप्रदेशीय उद्‌विकास का सिद्धान्त मानता है कि मनुष्य का उद्‌भव सर्वप्रथम अफ्रीका में बीस लाख साल पहले हुआ। इस प्रजाति का उद्‌विकास हुआ और कालांतर में यही पूरी दुनिया में फैली; जो अंतर्प्रजनन तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़ी रही। यानी कि नीयेंडरथल मानव, जावा मानव, पेकिंग मानव आदि सब इसके वंशज हैं।

इसके विपरीत अफ्रीकी उपकल्पना मानती है कि आधुनिक मानव का विकास इतना पुराना नहीं है। यह नई प्रजाति नीयेन्डरथल तथा अन्य अतिप्राचीन (आरकेयिक) मानव से भिन्न थी तथा धीरे-धीरे इसने उनको प्रतिस्थापित कर दिया। 1987 में हुए एक अध्ययन से इस अफ्रीकी संकल्पना को पुरजोर समर्थन मिला जब कुछ मॉलेक्यूलर जीवविज्ञानियों ने घोषणा की कि सारे जीवित लोग अपना आनुवंशिक पूर्वज उस स्त्री को मान सकते हैं, जो दो लाख साल पहले अफ्रीका में रहती थी।

चूंकि मायटोकोन्ड्रिया मां से बच्चे तक पहुंचते हैं, अत: वंशानुगत विभिन्नता प्रमुखत: उत्परिवर्तन (Mutation) से उत्पन्न होती है। ऐसा माना जाता है कि म्यूटेशन अटकलपच्चू (रेन्डम) रूप से होते हैं तथा एक जैसी दर से इकट्ठे होते रहते हैं, अत: एक कॉमन मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. पूर्वज का तिथि निर्धारण सैद्धान्तिक रूप से किया जा सकता है।

यह मॉलेक्यूलर घड़ी सूचित करती है कि मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. पूर्वज केवल दो लाख वर्ष पूर्व ही मौजूद था तथा वंशवृक्ष की जड़ें अफ्रीका में खोजी जा सकती हैं। ये परिणाम तथा ऐसे अवलोकन कि सबसे अधिक विभिन्नताएं अफ्रीका में ही मिलती हैं, दर्शाते हैं कि आधुनिक मानव अफ्रीका में सबसे अधिक समय तक रहा है। यह तथ्य निर्विवाद रूप से साबित करता है कि आधुनिक मानव का उदय हाल में अफ्रीका में हुआ है।

क्या हम इस स्त्री को आदिजननी (इव) कह सकते हैं? शायद नहीं – क्योंकि यूरोपीय पुनर्जागरण काल की

ईव नाज़ुक, सुंदर, सहमी हुई महिला थी। इसके ठीक विपरीत हमारी प्राचीन आदिजननी वास्तव में काली, मल्लेश्वरी के समान ताकतवर तथा भोजन प्राप्ति के लिए शिकार करने में भी बड़ी साहसी थी। न वो प्राचीन मां प्रथम स्त्री थी, न ही वो अकेली स्त्री; उसकी भी मां, नानी, बहनें रही होंगी। हो सकता है अन्य स्त्रियों के वंशज समाप्त हो गए होंगे, लेकिन यह मां भाग्यशाली थी – जिसका सबूत हम सब हैं।

क्या कोई आर्य प्रजाति है?

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी के आरंभ में प्रचलित बहु-स्थानीय उद्‌विकास का सिद्धांत नस्लवादी था। इसके अनुसार संशोधित होमो इरेक्टस आज के नीग्रो हैं तथा इसी का बेहतर स्वरूप नीयेंडरथल है जो कि यूरोपियन लोगों के पूर्वज हैं; जबकि जावा मानव एशिया की जनसंख्या का पूर्वज था, पेकिंग मानव आधुनिक चीनियों का पूर्वज था। एक मानव विज्ञानी कार्लटन कून का मत है कि यद्यपि अफ्रीका मानव के उद्‌विकास का पालना है, तथापि यह उद्‌विकास शिशु के स्तर पर रुक गया था, प्रत्येक प्रजाति ने अपने-अपने उद्‌विकास के लिए अलग-अलग मार्ग चुने – अर्थात कून के लिए जातियां जीवशास्त्रीय तथ्य हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में यह विचार चल पड़ा कि यूरोपीय और आर्य लोगों का उच्चतर उद्‌विकास हुआ तथा नीग्रो उद्‌विकास की सबसे नीचे की सीढ़ी पर रहे।

परन्तु मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. अध्ययनों ने इन नस्लवादी सिद्धांतों की बखिया उधेड़ दी। मायटोकोन्ड्रियल डी. एन. ए. अध्ययनों ने न केवल यह बताया कि हम सब एक ही मां की संतान हैं जो दो लाख वर्ष पूर्व रहती थी बल्कि यह भी कि हम जीवशास्त्रीय दृष्टि से एक ही प्रजाति हैं, चाहे हममें बहुत-सी दिखने वाली विभिन्नताएं हों।

क्या आर्य सचमुच आए? – अनुवांशिकीय अध्ययनों से प्रमाण

रिबेका केन, मार्क स्टोनकिंग तथा एलन विल्सन का अनुमान है कि जितने भी मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. बचे हैं उनके पूर्वज 1,40,000 तथा 2,90,000 वर्ष पूर्व रहे होंगे।

अफ्रीका से प्रवजन (माइग्रेशन) कब शुरू हुआ? उनके अनुसार सबसे पुराने मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. का समूह जो अफ्रीका से भिन्न है की तिथि 90,000 से 1,80,000 वर्ष पूर्व तक निर्धारित की जा सकती है। इस समूह ने शायद अफ्रीका उसी समय छोड़ा होगा। किन्तु मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. से प्राप्त जानकारी के आधार पर कोई पक्की तिथि नहीं निर्धारित की जा सकती।

भारत की तेईस जातियों* पर हाल में किए गए अध्ययन ने भारतीय उपमहाद्वीप में लोगों के निवास के विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला है। संगीता राय चौधरी, संगीता राय, पार्थ मजुमदार तथा अन्य इस अध्ययन में सम्मिलित थे।

इस अध्ययन से पता चलता है कि उत्तरी भारत की ऊंची जातियों के डी. एन. ए में यूरोपीय हिस्से (Markers) अधिक उपस्थित थे और जैसे-जैसे नीची जातियों की ओर जाते हैं यह आवृत्ति कम होती जाती है। परन्तु मायटोकोन्ड्रियल डी.एन.ए. का अध्ययन बताता है कि जाति, धर्म, भाषा या संस्कृति के बावजूद सबमें मूल पैटर्न एशियायिटक है; तथा यूरोपियन एवं अफ्रिकन से इसकी आनुवंशिक दूरी अधिक है।

इसका अर्थ यह हुआ कि मूल निवासी पहले ही यहां रहते थे — लगभग 60,000 से 40,000 वर्ष पूर्व। मगर कॉकेशियन्स के साथ मेल मिलाप से ऐसा लगता है कि पहले के प्रव्रजन (इमिग्रेशन) के अलावा यहां हाल में भी प्रव्रजन हुआ है। इसके बावजूद आदिवासियों सहित सारी जनसंख्या में कॉकेशियन तत्व हैं जिनको हम डी.एन.ए. के आधार पर निर्धारित नहीं कर सकते — कि कौन से पूर्ववर्ती निवासी हैं और कौन बाद में आए।

इन अध्ययनों के सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष भारत की अनुवांशिकीय एकता को सिद्ध करते हैं, डी.एन.ए. के आधार पर जाति, समुदाय, भाषा या संस्कृति को नहीं पहचाना जा सकता। समस्त भारतीय संभवतः पांच पूर्वज माताओं के वंशज हैं।

* इस सर्वेक्षण में जिन चयनित जन समुदायों के माइटोकोंड्रियल डी.एन.ए. के सेम्पल इकट्ठा किए गए थे, राज्यों के अनुसार उनके नाम और सेम्पल संख्या इस प्रकार है: त्रिपुरा (त्रिपुरी 45), प. बंगाल (बागड़ी 31, ब्राह्मण 22, महिष्या 33, संथाल 20, लौढा 32), उड़ीसा (अघरिया 24, गौड 13, तांती 16, मुंडा 7), मध्यप्रदेश (मुड़िया 49), उत्तर प्रदेश (ब्राह्मण 27, चमार 25, राजपूत 51, मुस्लिम 28), तमिलनाडु (अंबालकारेर 30, इरुला 30, आयंगर 30, अय्यर 30, कोटा 30, कुरुंबा 30, पल्लार 30, वन्नियार 30)

टी. वी. वेंकटेश्वरन: सेंटर फॉर डिवेलपमेंट ऑफ इमेजिंग टेक्नॉलॉजी, त्रिवेंद्रम में विज्ञान संचार के वरिष्ठ व्याख्याता।

अनुवाद प्रो. ए. एम. हर्णे: अंग्रेज़ी के सेवानिवृत प्राध्यापक हैं। होशंगाबाद में रहते हैं।

हमें कितना भोजन चाहिए

जे. बी. एस. हाल्डेन

वैज्ञानिक राशनिंग का सूत्र है कि 'हरेक को उसकी ज़रूरत के अनुरूप'। अब हमें यह तो पता है कि मनुष्य को कितने भोजन की ज़रूरत होती है किन्तु हम यह नहीं जानते कि उसे कितने वस्त्रों, मकानों वगैरह की ज़रूरत होती है। मसलन हम जानते हैं कि यदि अण्डरवेयर्स को सप्ताह में एक बार न धोया जाए तो उसमें जुएं पनपने लगती हैं। किन्तु हम कदापि नहीं जानते कि क्या उन्हें प्रतिदिन धोने से स्वास्थ्य संबंधी कोई विशेष लाभ मिलता है।

चूहा वह पहला जंतु है जिसकी भोजन संबंधी ज़रूरतों का पूर्ण आकलन किया गया था। मनुष्य की ज़रूरतें चूहों के समान नहीं हैं। मसलन यदि चूहों को एस्कॉर्बिक अम्ल यानी विटामिन 'सी' न मिले तो उन्हें इंसानों की तरह स्कर्वी रोग नहीं होता। दूसरी ओर चूहों को अपनी प्रोटीन की खुराक में हिस्टिडीन की ज़रूरत होती है जबकि इंसानों को नहीं होती।

सर्वप्रथम बात तो यह है कि मनुष्य को एक ऐसी खुराक चाहिए जिससे उसे अपना तापमान बनाए रखने और दैनन्दिन कार्य करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा मिल सके। भोजन द्वारा प्रदान की गई ऊर्जा कैलोरी में नापी जाती है। कैलोरी की ज़रूरत व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले काम पर निर्भर करती है। मसलन बिस्तर पर ही रहने वाले किसी व्यक्ति को 2000 कैलोरी तथा किसी खदान मज़दूर को 5000 कैलोरी तक की ज़रूरत हो सकती है। यह ऊर्जा मुख्यत: कार्बोहाइड्रेट्स (जैसे

मण्ड व शर्करा) और वसा के ऑक्सीकरण से प्राप्त होती है और यह हमें जाड़ों में गर्म बनाए रखने में विशेष रूप से मददगार होती है।

किसे कितनी ऊर्जा चाहिए

चूंकि इंसानों की ऊर्जा की ज़रूरतों में इतनी विविधता होती है इसलिए ज़रूरी है कि खुराक की कोई एक ऐसी चीज़ पर राशन न हो जो ऊर्जा संपन्न है। ब्रिटेन में युद्ध के दौरान भी हमें ब्रेड व आलू मनचाही मात्रा में उपलब्ध रहे। किन्तु कड़ी मेहनत करने वाले कई मज़दूर ऊर्जा के स्रोत के रूप में काफी वसा का सेवन करते हैं। हमारे यहां वसा की कमी है। खदान श्रमिक जो अधिक मांस की मांग करते हैं उसके पीछे प्रोटीन की ज़रूरत के अलावा वसा की ज़रूरत भी हो सकती है।

यदि खुराक में कैलोरी की बहुत कमी हो तो व्यक्ति का वज़न कम होने लगता है और अंततः भूख से मृत्यु हो जाती है। बेलसन में कैदियों को मात्र 800 कैलोरी प्रतिदिन मिलती थी। और इतनी कम कैलोरी पर कोई भी व्यक्ति छः महीने से ज़्यादा जीने की उम्मीद नहीं कर सकता, चाहे वह कोई काम न करे।

प्रोटीन की ज़रूरत वृद्धि के लिए होती है, खासकर यदि वह व्यक्ति कम उम्र का हो या गर्भवती हो। धात्री माताओं को शरीर में दूध निर्माण के लिए भी प्रोटीन की ज़रूरत होती है, जबकि एक सामान्य वयस्क को शरीर में होने वाली टूट-फूट की मरम्मत के लिए प्रोटीन चाहिए। एक सामान्य वयस्क को प्रतिदिन लगभग 70 ग्राम प्रोटीन की ज़रूरत होती है। इसके अलावा प्रोटीन की गुणवत्ता का भी महत्व है क्योंकि प्रत्येक प्रोटीन में समस्त अमीनो अम्ल नहीं पाए जाते। इस लिहाज़ से दूध, चीज़ (cheese), मांस, मछली बेहतर हैं। वनस्पति बीज (जैसे गेहूं) का प्रोटीन इस दृष्टि से अच्छा नहीं है। तो, यद्यपि रोटी में प्रोटीन की काफी मात्रा होती है किन्तु हमें जंतु प्रोटीन की भी ज़रूरत होती है।

जिन व्यक्तियों को प्रोटीन की कमी होती है वे लंबे समय तक जी तो सकते हैं किन्तु उन्हें नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। इसका एक आम उदाहरण हंगर ड्रॉप्सी है जो शायद रक्त प्लाज़्मा में प्रोटीन की कमी से उत्पन्न होता है। इसके चलते खून में से पानी शरीर के ऊतकों में रिस जाता है।

विटामिन किस्म-किस्म के

ऐसे कुछ कार्बनिक पदार्थ होते हैं जिनकी ज़रूरत हमें बहुत कम मात्रा में होती है। इन्हें विटामिन कहते हैं। मसलन हमें प्रतिदिन मात्र 75 मिलिग्राम विटामिन 'सी' की ज़रूरत

होती है। इसका सर्वोत्तम स्रोत फल हैं। आलू में भी इतना विटामिन 'सी' होता है कि आपको स्कर्वी से बचा सके किन्तु यह उम्दा स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त नहीं होता। हमें प्रतिदिन 20 मिलीग्राम निकोटिनिक अम्ल, तीन मिलीग्राम रिबोफ्लेवीन, तथा और भी कम मात्रा में अन्य तकरीबन दर्जन भर विटामिनों की ज़रूरत होती है। इनमें से किसी का भी घोर अभाव हो जाए तो पेलाग्रा, रतौंधी, रिकेट्स जैसा कोई रोग हो जाएगा किन्तु यदि इनकी थोड़ी कमी हो तो वृद्धि पर नकारात्मक असर पड़ता है तथा स्वास्थ्य खराब रहता है। ये विटामिन तमाम किस्म के भोज्य पदार्थों में पाए जाते हैं। हरी सब्ज़ियों का प्रमुख महत्व ही यह है कि वे इनमें से कुछ विटामिन्स की स्रोत हैं। कुछ विटामिन ऐसे हैं जो कुदरती तौर पर मक्खन में पाए जाते हैं या मार्ग्रेन में कृत्रिम तौर पर मिलाए जाते हैं। यदि आप रोज़ाना एक-सी चीज़ों का सेवन करते रहेंगे तो निश्चित है कि आपको किसी-न-किसी विटामिन की कमी होकर रहेगी।

हमें खनिज लवणों की भी ज़रूरत होती है। किसी गर्म खदान में काम करने वाला श्रमिक दिन भर में जितना नमक पसीने में छोड़ता है उसकी पूर्ति करने के लिए उसे प्रतिदिन एक औंस नमक की ज़रूरत होगी। हमें लगभग डेढ़ ग्राम फॉस्फोरस और एक ग्राम कैल्शियम की भी दैनिक ज़रूरत होती है। और यदि हमारी हड्डियों की वृद्धि तेज़ रफ्तार से हो रही हो, तो और भी ज़्यादा कैल्शियम व फॉस्फोरस चाहिए। दूध इन दोनों का अच्छा स्रोत है। हमें लगभग 12 मिलीग्राम लौह की भी ज़रूरत होती है और वह भी उस रूप में जिसे हमारे शरीर में आसानी से सोखा जा सके। कोको और कलेजी लौह के अच्छे स्रोत हैं। लौह के अभाव से एनीमिया हो जाता है। महिलाओं में एनीमिया की स्थिति ज़्यादा जल्दी बन जाती है क्योंकि उनमें खून का नुकसान भी ज़्यादा होता है।

उपरोक्त सारे आंकड़े लगभग हैं। धात्री व गर्भवती स्त्रियों को सारे पदार्थ ही ज़्यादा मात्रा में चाहिए। बढ़ते बच्चों को भी ज़्यादा पोषक पदार्थ चाहिए। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि इन मामलों में हमारे पास पूरी जानकारी उपलब्ध है। बहरहाल, हमारे पास जितनी जानकारी है वह गंभीर कुपोषण से निपटने के लिए पर्याप्त है। किन्तु अभी भी हम सर्वोत्तम खुराक बता पाने में असमर्थ हैं।

आखिर क्यों? आइए इस पर विचार करें। कोलम्बिया विश्वविद्यालय (न्यूयॉर्क) में चूहों की एक किस्म है। ये चूहे एक मानक खुराक पर पिछली 58 पीढ़ियों से पल रहे हैं। इन्हें यह छूट है कि इस खुराक को जितनी चाहें खा सकते हैं। मानव मापदण्डों से इसे

पर्याप्त खुराक कहा जाएगा। किन्तु जब इस खुराक में विटामिन 'ए' की मात्रा बढ़ाकर चौगुनी कर दी गई तो इनमें से नर चूहों की औसत आयु 652 दिन से बढ़कर 723 दिन हो गई और मादा चूहों की औसत आयु 724 दिन से बढ़कर 830 दिन हो गई। इससे भी ज़्यादा हैरत की बात यह रही कि मादाओं के बच्चे जनने की अवधि 265 दिन से बढ़कर 369 दिन हो गई। यदि आप 10 दिन को एक वर्ष गिनें तो आपको इंसानों के लिए आंकड़ा मिल जाएगा। इस तरह के प्रयोग स्त्री पुरुषों पर करना व्यावहारिक नहीं किन्तु जब तक सैकड़ों इंसानों को बरसों तक नियंत्रित खुराक पर रखकर नहीं देखा जाता तब तक हमें तथ्य प्राप्त नहीं होंगे। ऐसे प्रयोग बहुत महंगे होंगे किन्तु परमाणु बम और शायद युद्धपोतों से तो सस्ते ही।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। उनके निबंधों का एक संकलन 'ऑन बीइंग द राइट साइज़' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नामक संकलन से लिया गया है।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन एवं अनुवाद भी करते हैं।

कितना विज्ञान जानना ज़रूरी

प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षक को कितना विज्ञान जानना चाहिए?

आपको आपके विद्यार्थी जीवन के विज्ञान संबंधी कितने अनुभव याद हैं? अपने विचारों का पुन:निर्माण करने के लिए आइए यह तरीका आज़माकर देखें। कुछ क्षणों के लिए आप अपने स्कूल के दिनों, जैमे चौथीं या पांचवीं क्लास के दिनों को याद कीजिए। याद कीजिए आपने विज्ञान विषय में क्या-क्या सीखा था। दो-तीन बातें जो याद आएं उन्हें लिख लें व उनका मिलान अपने साथियों के अनुभवों से करें। कौन-से अनुभव सकारात्मक थे, कौन-से नकारात्मक? क्या सब के अनुभवों में कुछ समानता दिखती है?

आपके जैसे विद्यार्थियों ने हमें निम्न बातें बताई – किसी नदी के किनारे अध्ययन के लिए भ्रमण, मेंढकों की चीरफाड़, इल्ली से तितली में कायान्तरण की क्रिया का अवलोकन, विभिन्न प्रकार के पत्थरों का संग्रह आदि।

इस बात की काफी संभावना है कि आप में से किसी ने भी निम्न

विचारों को अपनी सूची में न शामिल किया हो जैसे ऑक्सीजन के परमाणु की संरचना, क्वार्ट्ज़ के स्फटिक का कड़ापन, मटर के दो पौधों को संकरित कर पीले मटर के दाने प्राप्त करने की संभावना, साधारण मनुष्य की कोशिका में पाए जाने वाले क्रोमोसोम यानी गुणसूत्रों की संख्या, घर्षण की प्रकृति, कैंची द्वारा प्रदर्शित लीवर का प्रकार अथवा डिग्री सेल्सियस में पानी का हिमांक बिन्दु आदि।

यदि आप शाला के अंतिम वर्षों अथवा कॉलेज के दिनों में सीखे हुए विज्ञान के ज्ञान को याद करेंगे तो भी हो सकता है कि आप विज्ञान संबंधी उपरोक्त जानकारी को उस सूची में शामिल न करें। किन्तु इसमें कोई शंका नहीं कि ये सारी बातें आपको विज्ञान विषय में पढ़ाई गई थीं!

उपरोक्त प्रयोग से एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। जब हम विज्ञान संबंधी उपरोक्त तथ्य, सिद्धांत अथवा जानकारी याद नहीं रख सकते तो यह सब सिखाया क्यों जाता है? (हो सकता है कि हमें यह भी पूछना चाहिए कि यह सब पढ़ाया कैसे जाता है।) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यात्मक जानकारी को पढ़ाने से न तो विज्ञान को लंबे समय तक याद रखा जा सकता है और न ही, इस तरह से विज्ञान के अध्ययन में आनंद की अनुभूति प्राप्त होती है; और न ही विज्ञान का रसास्वादन किया जा सकता है।

प्राथमिक स्तर के बालकों को विज्ञान कैसे पढ़ाया जाए यह आप सीखना चाह रहे हैं। आप चाहते हैं कि बालकों ने जो सीखा है उसे वे याद रखें। यदि उन्हें अब से 14 या 15 वर्ष बाद पूछा जाए कि "विज्ञान में आपने क्या सीखा था?" तो आप यह अपेक्षा करते हैं कि आपकी कक्षा में जो उन्होंने सीखा है उसमें से कुछ तो वे याद रखें! आप यह भी चाहेंगे कि वे विज्ञान का अध्ययन करते समय प्राप्त आनंद को भी याद रखें।

प्राथमिक स्तर के विज्ञान के शिक्षकों में एक धारणा बन जाती है कि उनका काम बच्चों के समक्ष अधिक-से-अधिक विज्ञान के ज्ञान को प्रस्तुत करना है। यह भी आम धारणा है कि विज्ञान स्वभाव से तथ्यात्मक होता है तथा कुछ सिद्धांत, तथ्य, जानकारियां आदि ऐसी होती हैं जिन्हें प्राथमिक स्तर के प्रत्येक बालक के लिए जानना अनिवार्य है। इस लेख में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि ये धारणाएं कितनी सही हैं।

विज्ञान के ज्ञान की मात्रा

विज्ञान शिक्षण में तथ्यात्मक जानकारी पर ध्यान केन्द्रित करने में सबसे बड़ी बाधा है ऐसी जानकारी

का विशाल भण्डार। आज विज्ञान संबंधी उपलब्ध जानकारी बहुत ही विशाल है – पचास हज़ार से अधिक अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्र विद्यमान हैं। विज्ञान संबंधी उपलब्ध जानकारी की सूचना देने हेतु आज 1,20,000 से अधिक तकनीकी पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। गणनाएं करने पर पता चलता है कि अगर कोई चाहे कि वो विज्ञान के इस भंडार से कदम मिलाकर चलना चाहता है तो उसे चालीस लाख शब्द प्रति मिनिट की गति से पढ़ना होगा। सन् 1982 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, "प्रतिदिन विज्ञान से संबंधित छह से सात हज़ार लेख लिखे जाते हैं।" वे आगे कहते हैं –

> "विज्ञान तथा तकनीकी जानकारी प्रतिवर्ष 13 प्रतिशत की दर से बढ़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह 5.5 वर्ष में दोगुनी हो जाती है। जानकारी की वृद्धि की यह गति शीघ्र ही 40 प्रतिशत प्रतिवर्ष होने की संभावना है क्योंकि जानकारी की नई एवं शक्तिशाली प्रणालियां उपलब्ध हो रही हैं, साथ ही वैज्ञानिकों की संख्या में भी तीव्र वृद्धि हो रही है। इसका अर्थ है कि बीस महीनों में ही जानकारी दुगनी हो जाया करेगी।"

उनके अनुमार 1985 तक ही, पिछले कुछ वर्षों की तुलना में, जानकारी का भंडार चार से सात गुना बढ़ जाएगा।

ऐसा अनुमान है कि सन् 2020 तक वैज्ञानिक जानकारी 73 दिनों में ही दुगनी हो जाया करेगी। दूसरे शब्दों में नववर्ष को उपलब्ध जानकारी, मार्च के मध्य तक ही दुगनी हो जाएगी। इस प्रकार आप देख ही रहे हैं कि आज विज्ञान संबंधी जानकारी का बहुत विस्तृत भंडार है और इसमें अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होती जा रही है।

चूंकि आज विज्ञान संबंधी जानकारी इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध है, हो सकता है कि हमारी कक्षा के बालक हमसे ऐसे प्रश्न करें जिनका उत्तर हमें ज्ञात न हो। उदाहरण के लिए आपने कायान्तरण (मेटामोरफोसिस) पढ़ाने का तय किया है। इसके लिए आप इल्लियों के कायान्तरण की विभिन्न अवस्थाओं संबंधी पाठ कक्षा में प्रस्तुत करने वाले हैं। आप इन अवस्थाओं को याद कर लेते हैं तथा गुबरेलों, पतंगों व तितलियों आदि के कायान्तरण में क्या समानता है, इस संबंध में अध्ययन कर लेते हैं। इस प्रकार आप कायान्तरण के अध्यापन हेतु तैयार हैं। इल्लियों से तितलियों में किस प्रकार कायान्तरण होता है, इम पाठ को आपने पूर्व तैयारी के साथ प्रस्तुत किया। अचानक कोई बालक आपसे कनखजूरे के बारे में प्रश्न पूछ लेता है क्योंकि पिछले कुछ दिनों से उसके घर में इनकी फौज आ धमकी है। अब क्या होगा? आपको

अपने अध्यापन के विषय में तो बहुत सारी जानकारी है किन्तु कनखजूरे के बारे में आप नहीं जानते। ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे?

अब हम एक दूसरे परिदृश्य की कल्पना करें। इस बार मान लो कि आप साधारण मशीनों की चर्चा कर रहे हैं। आप बालकों को खुद मशीनों की 'खोज' करने हेतु प्रेरित कर रहे हैं; तभी एक बालक क्रेन के बारे में प्रश्न पूछता है। क्रेन के बारे में आपने अध्ययन नहीं किया है। इस प्रकार आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। आप क्या करेंगे?

अब आप अच्छी तरह समस्या समझ गए होंगे। *आप विज्ञान का चाहे जितना गहन अध्ययन करें अथवा सीखें, वह कभी भी पर्याप्त नहीं होगा।*

अप्रचलित ज्ञान

विज्ञान में तथ्यात्मक जानकारी पर अधिक जोर देने पर एक और कठिनाई सामने आती है। विज्ञान संबंधी ज्ञान अप्रचलित हो सकता है। आज जो बात हम जानते हैं, कुछ वर्ष बाद उसके स्थान पर अलग जानकारी प्रचलन में आ जाती है। उदाहरण के लिए सन् 1956 से पूर्व जीव विज्ञान के शिक्षक अपने विद्यार्थियों को यह याद करने पर ज़ोर देते थे कि सामान्य मानव शरीर की एक कोशिका में 48 क्रोमोसोम (24 जोड़ी क्रोमोसोम) होते हैं। यदि किसी विद्यार्थी को यह तथ्य ज्ञात न हो तो उसकी शामत आ जाती थी। किन्तु सन् 1956 में यह खोज सामने आई कि मानव शरीर में केवल 46 क्रोमोसोम होते हैं, न कि 48! कल्पना कीजिए उन सब जीवशास्त्र के विद्यार्थियों का क्या हुआ होगा जो दुनिया भर में इस निर्विवाद ज्ञान के साथ घूम रहे हैं कि मानव शरीर में क्रोमोसोम की संख्या 48 होती है। इस तथ्यात्मक गलती के बारे में हम क्या कर सकते हैं?

ऐसा अनुमान है कि इंजीनियरों द्वारा अध्ययन किया गया आधा ज्ञान उनके व्यवसाय के 2–3 वर्ष में ही अप्रचलित हो जाता है और नई जानकारी उसकी जगह ले लेती है। हम पुन: यह प्रश्न प्रस्तुत करते हैं कि क्या ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों को सीखना महत्वपूर्ण है जो नई खोजों के आते ही अप्रचलित हो जाते हैं?

ज्ञान में बदलाव

विज्ञान में तथ्यात्मक जानकारी पर ज़ोर देने पर उपरोक्त के अलावा एक और कठिनाई सामने आती है, और वह है वैज्ञानिक ज्ञान में हो रहे बदलाव। वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप पूर्व में मान्य सिद्धांतों को नकार कर नए सिद्धांत प्रतिपादित किए जाते हैं। अधिक अनुसंधान, नई तकनीकों के विकास, खोज के परिष्कृत तरीके व

गहन अध्ययन के कारण बुनियादी तत्वों की हमारी समझ में बदलाव आते रहते हैं। प्रकाश का सिद्धांत इसका एक अच्छा उदाहरण है। आज की विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में यह सिखाया जाता है कि प्रकाश फोटॉन से बना होता है जिसमें कण तथा तरंग दोनों के गुण परिलक्षित होते हैं। किन्तु प्रकाश के ये गुण जिन्हें मैक्स प्लांक, अल्बर्ट आइन्स्टाइन तथा अन्य वैज्ञानिकों ने विकसित किया था, केवल 90 वर्ष पुराने हैं। इससे पूर्व विज्ञान की पुस्तकें प्रकाश को केवल तरंगों के गुण रखने वाला ही मानती थीं।

इसी प्रकार आज मान्य प्लेट टेक्टोनिक्स का सिद्धांत जो बताता है कि पृथ्वी के महाद्वीप व महासागर प्लेटों पर स्थित हैं जो चलायमान हैं, केवल तीस वर्ष पुराना है। पूर्व में जो सिद्धांत प्रचलित था उसके अनुसार महाद्वीप व महासागरों के तल स्थाई थे। वैज्ञानिक ज्ञान में होने वाले निरंतर बदलाव के अनेकों में से हमने केवल दो उदाहरण ही यहां प्रस्तुत किए हैं।

शिक्षक को कितना ज्ञान ज़रूरी

उपरोक्त चर्चा से यह प्रदर्शित होता है कि प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षकों को पर्याप्त मात्रा में विज्ञान सीखने में तीन प्रमुख कठिनाइयां आती हैं:

1. आज उपलब्ध विज्ञान के ज्ञान की मात्रा इतनी अधिक है कि एक व्यक्ति को समस्त अथवा उसका एक छोटा-सा हिस्सा भी जानना कठिन है।
2. वैज्ञानिक जानकारी जो आज तथ्यात्मक है, सही मानी जाती है, वह भविष्य में अप्रचलित हो सकती है।
3. विज्ञान के सिद्धांत समय के साथ बदलते रहते हैं।

ऐसी स्थिति में, प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षक को कितने विज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता होगी? हम यह किताब की शुरुआत में ही कह चुके हैं कि इसमें उत्तरों की अपेक्षा प्रश्न ही अधिक होंगे। यह प्रश्न ऐसा पहला उदाहरण है। इस प्रश्न का कोई उत्तर है ही नहीं कि 'प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षक को कौन-से वैज्ञानिक ज्ञान की जानकारी होनी चाहिए'। न ही इस प्रश्न का कोई सर्वमान्य उत्तर है कि 'प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षक को एक अच्छा विज्ञान शिक्षक बनने के लिए कम-से-कम कितने वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता है'?

राष्ट्रीय विज्ञान शिक्षा मानदण्डों के अनुसार विज्ञान के शिक्षकों को वैज्ञानिक जानकारियों का इतना विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक है कि वे

– वैज्ञानिक खोज के स्वभाव को, उसकी विज्ञान में मुख्य भूमिका को तथा इसमें लगने वाले कौशलों

व विधियों को समझ सकें।

- विज्ञान की मुख्य शाखाओं के मूलभूत तथ्यों तथा सिद्धांतों को समझ सकें।
- विज्ञान की शाखाओं के बीच तथा गणित, तकनीकी व अन्य शालेय विषयों के बीच सैद्धांतिक संबंध स्थापित कर सकें।
- वैयक्तिक व सामाजिक मुद्दों के संबंध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकें।

प्राथमिक स्तर के तीन विज्ञान शिक्षकों ने एक लेख में अपने विज्ञान के अध्यापन को किस प्रकार विकसित किया इसका वर्णन किया है। उनका कहना है कि पहले वे विज्ञान पढ़ाने के विशेष उत्सुक नहीं थे क्योंकि वे महसूस करते थे कि वे इसके लिए पर्याप्त रूप से तैयार नहीं थे। किन्तु उन्होंने विज्ञान शिक्षण के बारे में अपना तरीका बदला व वे सफल व स्फूर्तिदायक विज्ञान शिक्षक बन गए। ऐसा तब हुआ जब उन्होंने विद्यार्थियों के साथ मिलकर प्रयोग व खोज के माध्यम से सीखने का तरीका अपनाया। पढ़ाने से पहले वे विज्ञान के उन मूलभूत सिद्धांतों के बारे में अपने आपको ज़रूर परिचित कर लेते थे जिन्हें वे पढ़ाने वाले थे। "इस प्रकार हमने विद्यार्थियों को विज्ञान सीखने हेतु उत्साहित करने के साथ स्वयं का ज्ञान भी बढ़ाया"।

प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्ष को विकास के तीन मूलभूत क्षेत्रों उ विज्ञान, भौतिक विज्ञान व भू-अंतरि विज्ञान में अध्ययन करना अच्छा हो जैव-विज्ञान में कोशिकाओं, पौध प्राणियों, जीवनचक्र, जेनेटिक्स, उ विकास तथा पर्यावरण का अध्य शामिल है। भौतिक विज्ञान में त ऊर्जा तथा रसायन से संबंधित वि शामिल हैं। भू-अंतरिक्ष विज्ञान भूगर्भशास्त्र, पत्थर तथा खनिज, पृथ्व समुद्र, मौसम तथा पृथ्वी को आक देने वाली अन्य शक्तियां तथा अंतरि से संबंधित विषयों का समावेश हो है। इस सब के साथ-साथ अभी इत कहने में ही बुद्धिमानी होगी f "प्राथमिक स्तर के विज्ञान शिक्षक को विज्ञान को अच्छी तरह से पढ़ा के लिए विज्ञान के विस्तृत ज्ञान व आवश्यकता नहीं होती।"

मेरे लेखन को आप धर्म निं (विज्ञान निंदा!) का आरोप लगाक रद्दी की टोकरी में फेंक दें उस पहले मैं एक बात स्पष्ट करना चाहत हूं कि विज्ञान में कुछ मूलभूत सिद्धां ऐसे हैं जिन्हें सभी शिक्षकों को य ऐसा कहें कि सभी नागरिकों को जानन तथा उनसे परिचित होना आवश्य है। किन्तु प्राथमिक स्तर के शिक्षको को विज्ञान के तथ्यों के संग्रह को सिद्धांतों को, नियमों आदि क आत्मसात करने की कोई आवश्यकत

नहीं है। उन्हें यह जानने की आवश्यकता है कि बच्चे विज्ञान कैसे सीखते हैं और उन्हें विज्ञान कैसे पढ़ाया जाए। एक महानुभव ने कहा है कि "शिक्षक कक्षा में क्या व कैसे करता है यह अधिक महत्वपूर्ण है बल्कि इसके कि वह क्या जानता है व कौन-सा पाठ्यक्रम उपयोग में लाता है।"

इस दुविधा से निकलने का एक रास्ता है। बड़ी मात्रा में वैज्ञानिक जानकारी को जानने से बेहतर होगा यदि विद्यार्थी 'विज्ञान को कैसे करना' यह सीख लें। उन्हें वैज्ञानिक निरीक्षण करना, सृजन करना, नए विचार सामने लाना, संश्लेषण करना, विश्लेषण करना, मूल्यांकन करना आदि बातें सीखनी चाहिए। उन्हें अपने सिद्धांत स्वयं बनाना आना चाहिए। उन्हें उनके लिए क्या महत्वपूर्ण है और क्या महत्वपूर्ण नहीं है इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

विज्ञान शिक्षकों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे बच्चों के मस्तिष्क में असंख्य तथ्यों, सिद्धांतों को ठूस-ठूस कर भरें। वे ऐसा इस गलत धारणा की वजह से करते हैं कि ऐसा करना बच्चों को कल के समाज में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। बच्चों को विज्ञान को 'करना' सिखाना चाहिए।

हिन्दी अनुवाद: पी. बी. हर्डीकर: सेवानिवृत प्राचार्य। शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि। फिलहाल भोपाल में रहते हैं।

यह लेख 'प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण' किताब से लिया गया है।

पहाड़ों पर ठंडक क्यों

सवाल: सवालीराम ने आपसे पिछली बार सवाल किया था कि ऊंचाई पर जाने के साथ तापमान कम क्यों होता जाता है – जबकि धरती से ऊपर उठने का सीधा अर्थ यह है कि हम सूरज के करीब जा रहे हैं। इस वजह से तो हमें पहाड़ पर ज़्यादा गर्मी महसूस होनी चाहिए।

जवाब: गर्मी का मौसम शबाब पर है। इन दिनों कई लोग गर्मी से निजात पाने के लिए पहाड़ों पर आरामगाहों की ओर रुख कर लेते हैं। पहाड़ों से लौटे हुए लोग अपने अनुभव सुनाते समय यह बताना नहीं भूलते कि मैदानी इलाकों के मुकाबले में वहां बड़ी ठंड़क होती है।

ज़रा ठंड के दिनों को याद कीजिए जब हम अलाव ताप रहे होते हैं। अलाव तापते समय हमारा अनुभव कुछ और ही होता है। जैसे-जैसे हम अलाव के करीब आते हैं हमें गर्मी ज़्यादा महसूस होती है। इस अनुभव के आधार पर तो यह सोचना एकदम वाजिब है कि यदि हम माउंट एवरेस्ट पर खड़े हों, जिसकी ऊंचाई समुद्र सतह से 8848 मीटर है, तो हमें ज़्यादा गर्मी महसूस होनी चाहिए क्योंकि यहां हम सूरज के ज़्यादा करीब हैं। लेकिन होता इसका एकदम उल्टा है – माऊंट एवरेस्ट पर न सिर्फ बारह महीनों बर्फ जमी होती है बल्कि तापमान भी शून्य डिग्री सेंटीग्रेड से कम ही बना रहता है। ज़रा सोचिए ऐसा क्यों होता है?

दरअसल इस सवाल का जवाब ढूंढने के लिए पहले यह समझना ज़रूरी है कि पृथ्वी का वातावरण गर्म कैसे होता है। सूर्य में नाभिकीय संलयन से जो ऊर्जा पैदा होती है वो हम तक केवल एक ही तरीके से पहुंच सकती है – विकिरण के द्वारा क्योंकि पृथ्वी व सूर्य के बीच का करोड़ों किलोमीटर का फासला एकदम खाली है, इसलिए उष्मा न तो चलन की विधि से हम तक पहुंच सकती है, न संवहन की विधि से। तो बस केवल विकिरण का तरीका ही बचता है।

विकिरण के द्वारा सूर्य से तरह-तरह की किरणें धरती तक पहुंचती हैं – एक्स किरणें, पराबैंगनी किरणें, दृश्य प्रकाश किरणें, अवरक्त किरणें

..... और भी बहुत-सी। धरती पर आने वाले सूर्य प्रकाश में ये सभी किरणें होती हैं जो वायुमंडल से होती हुई धरती की सतह तक पहुंचती हैं। हमारे वायुमंडल की एक विशेषता है कि जब ये किरणें वायु मंडल से होकर गुज़रती हैं तब वायुमंडल गर्म नहीं होता क्योंकि इनमें से ज़्यादातर किरणें वातावरण की हवा के साथ कोई अंतर्क्रिया नहीं करती और आकर धरती की सतह से टकराती हैं। जैसे कि टकराने पर होता है इनका कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है और कुछ धरती की ऊपरी सतह में अवशोषित।

इस अवशोषित हिस्से को धरती पुनः विकिरण के रूप में छोड़ती है परन्तु जो हिस्से अवशोषित हुए थे वे वैसे के वैसे नहीं छोड़े जाते – पुनः छोड़े गए ज़्यादातर हिस्से अवरक्त किरणों के रूप में होते हैं। अवरक्त किरणें वर्णक्रम का वह हिस्सा है जो हमें गर्मी का अहसास देता है। यही अवरक्त किरणें पृथ्वी की सतह के आसपास के वातावरण की हवा को भी गर्म कर देती हैं जिससे धीरे-धीरे पूरा वातावरण गर्म होने लगता है।

यानी कि वातावरण की हवा सूर्य की किरणों से टकराने की वजह से गर्म नहीं होती, बल्कि सूर्य की किरणों की वजह से गर्म हो गई धरती की सतह के संपर्क में आने से गर्म होती है। फिर हवा में संवहन की धाराएं बहने से धीरे-धीरे हवा की ऊपरी पर्तें भी गर्म होने लगती हैं। यह गर्म हवा ऊपर की ओर उठती है और आसपास की ठंडी हवा इसका स्थान लेती है। धरती की गर्म सतह से दूर जाते हुए गर्म हवा अपनी उष्मा खोती जाती है और ठंडी होती जाती है।

इस तरह हम समुद्र सतह से जैसे-जैसे ऊंचाई की ओर बढ़ते हैं तापमान लगभग 6 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर की दर से कम होता जाता है। हालांकि यह कोई पत्थर की लकीर की तरह का नियम नहीं है, इसमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं जिन पर थोड़ी देर बाद चर्चा करेंगे।

दिल्ली गर्म और शिमला ठडा

शायद अब यह समझ पाना थोड़ा आसान होगा कि कांक्रीट से घिरी दिल्ली या मरुस्थलीय शहर जैसलमेर का तापमान जब जून के महीने में 45 डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है तब शिमला में तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेड से भी नीचे होता है।

इसका कारण यह है कि मैदानी इलाके में बसी दिल्ली में आपको चारों ओर इमारतें ही इमारतें दिखाई देती हैं तो जैसलमेर में दूर-दूर तक फैला हुआ रेगिस्तान। यानी दोनों ही जगहों पर सूर्य प्रकाश से गर्म होकर वहां की हवा को गर्म करने की संभावना कहीं ज़्यादा है। मिट्टी, सड़कें, इमारतें, झीलें,

जेम्स ग्लेशर की बैलून यात्रा

वायुमंडल की ऊपरी परत ठंडी होती है इसका अहसास तो इंसान ने पहाड़ों के मार्फत कई बार किया था लेकिन यह कितनी ठंडी होती है इसका सिलसिलेवार अध्ययन 1860 के बाद ही शुरू हो सका।

जून 1862 की बादलों से आच्छादित एक दोपहरी को इंग्लैंड के जेम्स ग्लेशर और उसके एक सहायक ने गैस बैलून की सहायता से एक उड़ान भरी। इस उड़ान का एक उद्देश्य था वायुमंडल में ऊंचाई के हिसाब से तापमान में आने वाले परिवर्तनों को पता करना। उड़ान भरने के पहले ज़मीनी तापमान 19 डिग्री सेंटीग्रेड था। उड़ते हुए उनका बैलून 7050 मीटर की ऊंचाई पर जा पहुंचा। इस ऊंचाई पर तापमान थाः –8.3 डिग्री सेंटीग्रेड। इस तरह उन्होंने अपनी इस उड़ान में साधारण गर्मी से कड़ाके की सर्दी तक को बर्दाश्त किया था।

जेम्स ग्लेशर ने इस उड़ान के बाद तापमान की गिरावट का पूरा ब्यौरा दिया। जेम्स ने 1862 से 1866 के दौरान कई उड़ानें भरीं और यह पक्का किया कि निस्संदह ऊंचाई बढ़ने के साथ-साथ तापमान और दबाव में गिरावट आती है।

वैसे आज हम यह जानते हैं कि वायुमंडल के ट्रोपोस्फीयर और मिसोस्फीयर नामक परतों में ही ऊंचाई बढ़ने के साथ तापमान में गिरावट दर्ज होती है। स्ट्रेटोस्फीयर और थर्मोस्फीयर में इसका उल्टा होता है यानी ऊंचाई बढ़ने के साथ तापमान बढ़ता है।

ट्रोपोस्फीयर से ठीक ऊपर वाली परत होती है स्ट्रेटोस्फीयर। इस परत में ऊंचाई बढ़ने के साथ तापमान बढ़ता जाता है – औसतन कम-से-कम तापमान –60 डिग्री सेंटीग्रेड होता है और अधिकम तापमान 0 डिग्री सेंटीग्रेड। इस परत में ऊंचाई के साथ तापमान के बढ़ने का प्रमुख कारण ओज़ोन की मौजूदगी बताया जाता है। हमें मालूम है कि ओज़ोन के अणु कुछ पराबैंगनी किरणों को सोख लेते हैं जिसकी वजह से इस परत में ऊंचाई के साथ-साथ तापमान बढ़ता जाता है।

सागर, रोशनी को सोखकर आसपास की हवा को गर्म कर देते हैं। जितना ज़्यादा वनस्पति रहित इलाका होगा, जहां सूरज की सीधी रोशनी लंबे समय तक पड़े वहां उतना ही अधिक तापमान होगा।

अब शिमला की बात करें तो यहां से आपको किसी भी ओर आसमान आसानी से दिखाई दे जाएगा। पहाड़ों की एक विशेषता यह है कि तेज़ ढलानों

के कारण किसी भी एक स्थान पर भूभाग का विस्तार कम होता है और ऊंचाई के साथ यह कम होता जाता है। और दूसरा, पहाड़ों के ढलानों की वजह से सूर्य एकदम सिर पर हो तो भी ढलानों पर सूर्य की किरणें तिरछी ही पड़ती हैं जिससे धरती ज़्यादा गर्म नहीं हो पाती। आपने गौर किया होगा कि दिसंबर में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के कारण भर दोपहर को भी धूप तीखी नहीं लगती। जबकि जून की दोपहर की सीधी पड़ने वाली सूर्य किरणें असहनीय होती हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है वायुमंडल नीचे से गर्म होना शुरू होता है और यह गर्मी धीरे-धीरे ऊपरी वायुमंडल तक पहुंचती है। इस दौरान नीचे से ऊपर उठने वाली गर्म हवा अपनी गर्मी खोती जाती है जिसकी वजह से ऊंचाई पर वह गर्मी नहीं होती जो मैदानी इलाकों में सामान्यत: होती है। इसलिए गणित के हिसाब से तो पहाड़ होने का मतलब सूरज से कुछ मीटर या किलोमीटर पास होना है लेकिन देखा जाए तो पहाड़ों पर आप वायुमंडल को वास्तव में गर्माने वाले स्रोत (यानी कि धरती की सतह) के करीब नहीं बल्कि कुछ दूरी पर हैं।

इसी तरह ऊपर यह भी कहा गया है कि समुद्र सतह से जैसे-जैसे ऊंचाई की ओर बढ़ते हैं तापमान 6 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर की दर से कम होता जाता है। लेकिन नियम के भी अपवाद मिलते हैं जैसे लेह जो काफी ऊंचाई (औसतन पांच हज़ार मीटर) पर बसा है। जब भी आप लेह जाएंगे तो आपको महसूस होगा कि अन्य पहाड़ी आरामगाहों के मुकाबले लेह में तुलनात्मक रूप से गर्मी ज़्यादा है। सोचिए ऐसा क्यों होता होगा?

शिमला, मसूरी, नैनीताल की ढालों वाली पहाड़ी के मुकाबले लेह ऊंचाई पर स्थित एक पठारी इलाका है। यहां लगभग समतल भूभाग है। जैसा कि पठारी इलाकों में अमूमन होता है दिन के समय सूरज के विकिरणों को सोखकर यहां दिन का सामान्य तापमान कुछ बढ़ जाता है। इसलिए ऊंचे पहाड़ी हिल स्टेशन के विपरीत लेह काफी गरम रहता है। पर रात का तापमान फिर गिर जाता है।

· का यह जवाब राकेश मोहन हल्लन, नई दिल्ली के एक लेख पर आधारित है।

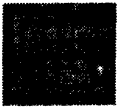

रासायनिक क्रियाओं को तेज़ करना

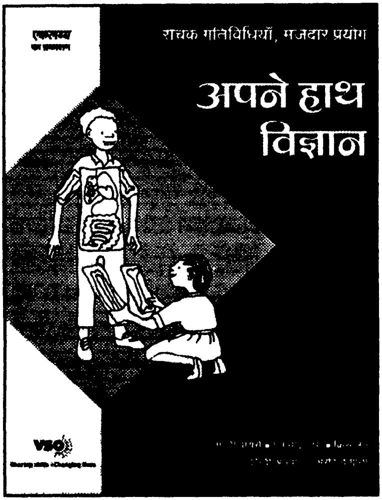

कक्षा में विज्ञान पढ़ाना एक चुनौती भरा काम होता है। प्रयोग और गतिविधियों की मदद से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है लेकिन इस विधि में बहुत सारी समस्याएं आ खड़ी होती हैं। ऐसी सब परेशानियों को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को तैयार किया गया है।

इस पुस्तक में संकलित प्रयोग तमाम व्यावहारिक संभावनाएं दिखाते हैं। वे शिक्षकों को एक नई शुरुआत करने के लिए प्रेरित करते हैं। परन्तु साथ ही उनसे यह अपेक्षा भी है कि प्रयोगों में इस्तेमाल होने वाले उपकरणों को स्थानीय उपलब्धता और उपयुक्तता के अनुसार बदलना होगा। और उससे भी आगे बढ़कर, जैसे-जैसे शिक्षक इस विधि से आगे बढ़ेंगे, बहुत से विचार व गतिविधियां अपने आप ही जुड़ते जाएंगे।

पिछले अंक में हमने आंत और पाचन संबंधी प्रयोग देखे थे। इस बार रासायनिक क्रियाओं को तेज़ करने के संबंध में कुछ गतिविधियां दी जा रही हैं।

रासायनिक क्रियाओं को तेज़ करना

किसी भी रासायनिक क्रिया की गति कई घटकों पर निर्भर करती है। नीचे इसके कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

* अगर क्रिया में भाग ले रहे पदार्थों का सतही क्षेत्रफल बढ़ा दिया जाए तो उससे क्रिया में तेज़ी आती है।
* जितना अधिक तापमान होगा उतनी ही तेज़ क्रिया होगी।
* क्रिया में भाग लेने वाले रसायन जितने सांद्र होंगे क्रिया उतनी ही तेज़ होगी।
* जैसे-जैसे अंतिम उत्पाद की सांद्रता बढ़ती है वैसे-वैसे क्रिया की गति धीमी पड़ती है।
* उत्प्रेरक और एंज़ाइम (जैविक कैटेलिस्ट) से क्रियाएं तेज़ की जा सकती हैं। कुछ क्रियाएं उत्प्रेरक की गैर मौजूदगी में इतनी धीमी गति से होती हैं कि ऐसा लगता है कि जैसे कुछ हो ही न रहा हो।

चीनी और पानी

सतही क्षेत्रफल संबंधी खोज -बीन

आवश्यक सामग्रीः

कार्ड, कैंची, चीनी के घनाकार टुकड़े।

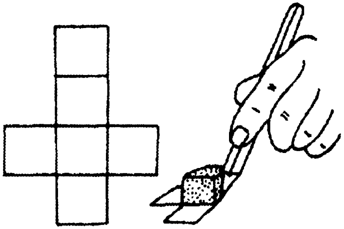

छात्र चीनी के घन की सभी सतहों का चित्र बनाकर उसका सतही क्षेत्रफल ज्ञात कर सकते हैं।

अगर घन के आयतन को दुगुना या तिगुना किया जाए तो उससे घन के सतही क्षेत्रफल पर क्या असर पड़ेगा? इस संबंध पर छात्रों के साथ खोज-बीन करें।

चीनी और पानी

आवश्यक सामानः

पानी, चीनी के घनाकार टुकड़े।

चीनी के एक घन को पानी के एक बर्तन में डालें। पानी के दूसरे बर्तन में चीनी के पिसे हुए घन को डालें। अब नोट करें कि

कौन-सा पहले घुलता है। छात्रों से पूछें कि ऐसा क्यों हुआ। यह प्रयोग आप मिश्री के साथ भी कर सकते हैं।

अगर पानी को गर्म या ठंडा किया गया तो उससे चीनी के घन के घुलने की गति पर क्या प्रभाव होगा? इस प्रयोग को गतिविधि के विस्तार के रूप में करें। इसका रिश्ता खाना पकाने से जोड़ें।

चूने का पत्थर और अम्ल

आवश्यक सामान:

चूने का पत्थर या कुछ पिसे सीप, अम्ल, थर्मामीटर

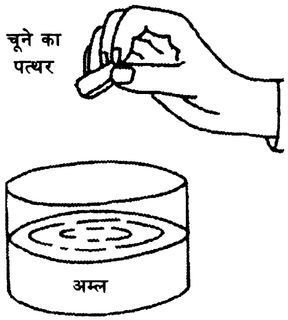

चूने के पत्थरों को अम्ल में डालें और क्रिया की गति को नोट करें। जितनी तेज़ क्रिया होगी उतनी ही तेज़ी से चूने के पत्थरों से गैस निकलेगी।

हरेक बार केवल एक घटक को बदलें और उससे क्रिया की गति में हुए बदलाव को नोट करें। उदाहरण के लिए आप चूने के पत्थर को कूट सकते हैं, अम्ल की सांद्रता को कम कर सकते हैं, और अम्ल का तापमान बढ़ा या घटा सकते हैं।

गैस निकलने की गति को नापना

आवश्यक सामान

प्लास्टिक की लचीली बोतल, प्लास्टिक की नली, आयतन नापने का नपनाघट या बोतल

इस उपकरण द्वारा बोतल में एकत्र गैस को निकालकर नापा जा

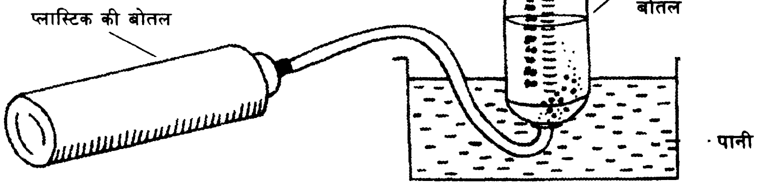

सकता है। और अगर गैस को मात्रा के निशान लगी बोतल में सीधे एकत्र किया जाता है तो फिर गैस को निकालने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी।

खाने का सोडा और अम्ल

आवश्यक सामान:
खाने का सोडा, सिरका या कम सांद्रता का अम्ल

अम्ल में खाने का सोडा डालें। इस मिश्रण में खूब सारे बुलबुले पैदा होंगे (झाग बनेगा) और कार्बन डाईऑक्साइड गैस निकलेगी। जितने ज़्यादा बुलबुले बनेंगे उतनी ही तेज़ क्रिया होगी। हर बार प्रयोग के एक खास पहलू को बदलें और उससे क्रिया की गति में आए परिवर्तन पर चर्चा करें। मिसाल के लिए आप अम्ल की सांद्रता और क्रिया के तापमान को बदल सकते हैं।

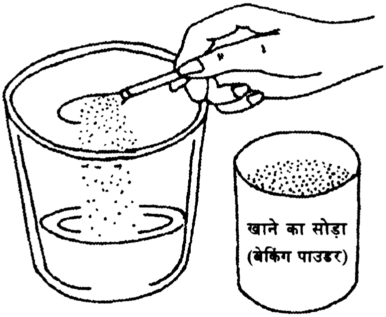

अगर आप हर बार निकलती हुई गैस को एकत्र करके नापें तो प्राप्त आंकड़ों के आधार पर प्रयोग का विश्लेषण किया जा सकता है।

हाइड्राजन पराक्साइड

एक एंज़ाइम के साथ

आवश्यक सामान
हाइड्रोजन पेरॉक्साइड, साबुन या डिटर्जेन्ट, बड़ा बर्तन, एंज़ाइम

आलू को कूटकर बनाई या खमीर की एंज़ाइम उपयुक्त होगी। हाइड्रोजन पेरॉक्साइड तथा साबुन के मिश्रण में कच्चे आलू का एक छोटा टुकड़ा रखें। अगर आलू सख्त हो तो पहले उसे थोड़ा कूट लेने से फायदा होगा। अगर आप सूखे खमीर (यीस्ट) का उपयोग कर रहे हों तो पहले उसे सक्रिय बनाएं (पैकट पर छपे निर्देश पढ़ें)।

जैसे-जैसे ऑक्सीजन बनेगी वैसे ही सतह पर झाग बनेगा। झाग की ऊंचाई को, क्रिया की गतिशीलता नापने का पैमाना माना जा सकता है। अगर मिश्रण में आलू या खमीर की मात्रा को बढ़ाया जाए तो उससे क्रिया की गति पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इससे सक्रिय एंज़ाइम (पेरॉक्सीडेस) की मात्रा बढ़ जाएगी। आप साबुन की मात्रा बढ़ाकर भी देख सकते हैं।

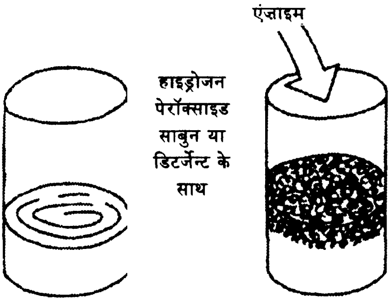

रासायनिक के साथ

आवश्यक सामान:

मैंगनीज़ ऑक्साइड, हाइड्रोजन पेरॉक्साइड, इंजेक्शन की शीशी, गैस इकट्ठा करने की बोतल और नली।

टॉर्च के सेल के अंदर का काला चिपचिपा पेस्ट ही मैंगनीज़ ऑक्साइड होता है।

आप सभी अवयवों को मिलाएं और फिर गैस (ऑक्सीजन) को पानी के ऊपर एकत्र करें। यह प्रयोग निम्न बातों की खोज-बीन करने के लिए उपयुक्त है:

- सांद्रता
- उत्प्रेरक का प्रभाव

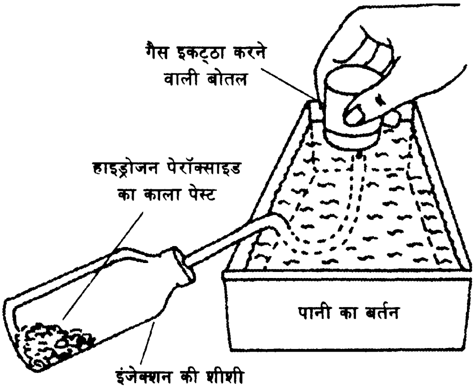

गणित की सामान्य त्रुटियां

प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों की गलतियों का एक विश्लेषण

एच. सी. प्रधान

इस लेख में, मैं ऐसे कुछ प्रकार की त्रुटियां प्रस्तुत कर रहा हूं, जो प्राथमिक शालाओं के बच्चे गणित करते समय करते हैं। क्या ये त्रुटियां समझने में असमर्थता के कारण होती हैं या लापरवाही की वजह से होती हैं? या फिर ये त्रुटियां बच्चों की व्यक्तिगत समझ, किसी अवधारणा पर उनके व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य के विकास का रास्ता दिखाती हैं? इन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए ही हम कुछ त्रुटियों का विश्लेषण करेंगे। सबसे पहले हम संध्या द्वारा हल किए गए घटाने के कुछ सवालों को देखेंगे और समझने का प्रयास करेंगे कि इसके बारे में उसकी समझ कैसी है –

278	352	406
·135	−146	−219
143	206	107
(क)	(ख)	(ग)

क से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संध्या को बिना उधार लिए घटाना आता है।

ख से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसे उधार लेकर भी घटाना आता है।

जब हम अगले सवाल पर पहुंचते हैं तो हमें यह महसूस होता है उसे उधार लेने में कहीं कुछ कठिनाई है। यहां क्या हो रहा है?

ग में जब उसे उधार लेकर 9 को घटाना है तो वह सामने 0 पाती है। इस प्रकार की स्थिति उसके सामने पहले नहीं आई होगी। इसलिए उसे पता नहीं है कि उसे क्या करना है। उसे सिर्फ यही पता है कि उसे उधार लेना है और उधार बाएं से लेना है। इसलिए वह और आगे बढ़कर 4 से उधार ले लेती है। उधार लेने की बात को निपटाने के बाद उसको दहाई संख्या

का कुछ करना है क्योंकि उसे 0 में से कोई संख्या घटाना नहीं आता है इसलिए वह बचने का यही रास्ता ढूंढती है कि उत्तर में 0 लिख देती है।

बच्चों के ये हल, सही हों या गलत घटाने के प्रति समझ दिखलाते हैं। ये त्रुटियां लापरवाही वाली गलतियां नहीं हैं। इनके पीछे भी कोई तर्क है, पहले के अनुभव के आधार पर सामान्यीकरण है। यह उसके काम का वास्तव में एक सकारात्मक पहलू है परन्तु उसका सामान्यीकरण गलत है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों द्वारा की गई बहुत-सी गलतियां इसी प्रकार की होती हैं। प्राथमिक स्तर का गणित खासतौर से अंक व बीज गणित की रचना ऐसी है कि वह सूत्र-विधि आधारित ही होती है। बच्चों को मात्र सूत्र बता दिए जाते हैं और उनका अनुकरण करने की हिदायत दे दी जाती है। किसी भी सवाल को करते समय बच्चों को बस यह चरण याद रहने चाहिए, चाहे उसके पीछे छिपे तर्क की उसे कोई समझ हो या न हो। कहीं-कहीं पर सवाल से जूझते समय ऐसा हो सकता है कि किसी चरण को अपनाते समय बच्चे को लगे कि उस चरण पर उसकी पकड़ नहीं है, ऐसा ही संध्या के साथ हुआ जब उधार लेते समय उसका शून्य से वास्ता पड़ा। ऐसे में अक्सर कोशिश यह होती है कि किसी पुराने देखे हुए तरीके से थिगड़े लगाकर सवाल हल कर दें।

इसी से बच्ची अपने पुराने अनुभव के आधार पर स्वयं सामान्यीकरण करती है एवं परिकल्पना बना उसे नई परिस्थिति में लागू कर देती है। अक्सर यह तरीका दैनिक जीवन में काम कर जाता है, यदि सामान्यीकरण गड़बड़ है तो बात गलत हो जाती है। परन्तु इन गलतियों के चलते हमें बच्चों को और ज़्यादा परिकल्पनाएं बनाने से व उनकी जांच-परख करने से नहीं रोकना चाहिए। हमें यह भी पहचानना चाहिए कि इससे त्रुटियां होंगी ही, परन्तु हम शिक्षक होने के नाते इन त्रुटियों को सीखने के उपयोगी साधनों में बदल सकते हैं।

इसी प्रकार के घटाने के कुछ और उदाहरण देखते हैं—

352	406
− 146	− 219
214	213

इस प्रकार की त्रुटि गणितीय साहित्य में 'बड़े से ही छोटा घटाया जा सकता है', बीमारी के रूप में पहचानी गई है। बच्चा वफादारी से सिर्फ इसी नियम को, जो कि उसने सीखा हुआ है, लागू करता है कि छोटी संख्या को बड़ी में से घटाना है और इसी नियम को हर अंक (इकाई, दहाई, सैंकड़ा आदि) पर लागू करता है।

स्थानीयमान की समझ

अब स्थानीयमान से संबंधित एक उदाहरण देखते हैं। दूसरी कक्षा के बच्चों को तीन अंकों की संख्या लिखने को देने पर उनके जवाब लगभग एक ही प्रकार के थे – 476 के स्थान पर 40076, 353 के स्थान पर 30053 आदि। उनकी दहाई की संख्या की जानकारी सही थी, जो कि शायद उन्होंने पहली कक्षा में दो अंकों की संख्याओं के अभ्यास में सीखी होगी। कुछ बच्चों से बात करने पर यह मालूम हुआ कि उन्होंने 100, 200, 300, 400 संख्याएं रट कर सीखी थीं। इसलिए वे 2 अंकों की संख्या के साथ इन्हें जोड़कर लिख देते हैं, यानी 476 को 40076 लिखते हैं।

अभाज्य संख्याएं

भाजकता में जो महत्वपूर्ण व सामान्य त्रुटियां बच्चे सामान्य तौर पर करते हैं, अब हम उन्हें देखते हैं। सबसे सामान्य त्रुटि यह है कि बच्चे सभी विषम संख्याओं को अभाज्य संख्या मान लेते हैं। शायद उन्हें यह भ्रम इसलिए होता है क्योंकि उन्हें यह बताया जाता है कि 2 को छोड़कर सभी अभाज्य संख्याएं विषम हैं।

आइए, बच्चों के कुछ कथनों पर ध्यान दें। उन्होंने कहा कि 24 के सभी भाजक 1, 3, 4, 6, 12, 24 हैं। बच्चे 2 के अलावा सभी भाजक संख्याएं बता रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा होगा? उन्हें हमेशा से यही बताया गया है कि भाजक संख्याएं लिखते वक्त 1 और दी गई संख्या (24) भी भाजकों में लिखनी होती है, और ऐसा वे वफादारी से कर देते हैं। उसके बाद बाकी की भाजक संख्याएं भाग करके पता करनी होती हैं। ऐसा देखा गया है कि वे भाग करते समय असल में भाज्यता को नहीं देखते बल्कि पहाड़े बोलकर जांचते हैं। भारतीय भाषाओं में बच्चे ज़्यादातर 10 तक के पहाड़े बोलते, याद करते व बना लेते हैं। चूंकि –

$$3 \times 8 = 24,$$
$$4 \times 6 = 24,$$
$$6 \times 4 = 24,$$
$$12 \times 2 = 24$$ है।

इसलिए पहाड़े बोल कर 3, 4, 6, 12 भाजक के रूप में 'खरे' पहचान लिए जाते हैं, किन्तु $2 \times 12 = 24$ इस तरह से पहाड़े बोल कर नहीं पहचाना जा सकता। बच्चे क्रम-विनिमय (Commutativity) का भी उपयोग नहीं करते। इसके उपयोग से वे कह सकते थे कि अगर 12 भाजक है तो 2 भी भाजक होना ही चाहिए।

इस 'दिक्कत' की जांच इसी समूह से 36 के भाजक लिखवा कर की गई। इसमें से उन्होंने 2 व 3 दोनों

को छोड़ दिया।

भाजकता जांचने में एक और मज़ेदार गलती इस प्रकार है – जब बच्चों को 8 और 9 का महत्तम पूछा गया तो उनमें से काफी बच्चों ने कहा '0'। वे 8 को $2\times2\times2$, $9=3\times3$ लिखते हैं और इनमें उनको कोई समान गुणन खण्ड नहीं मिलता। क्योंकि कोई भी समान गुणन खण्ड नहीं मिलता वे इसे 'शून्य' या 'कुछ नहीं' मान लेते हैं।

जो ढूंढ़ा जा रहा है उसकी अनुपस्थिति दर्शाने के लिए 0 लिखने की आदत अन्य परिस्थितियों में भी सामान्य रूप में दिखती है। उदाहरण के लिए बहुत से बच्चे ऐसा लिखते हैं:

$$\frac{15}{5\times3} = 0 \qquad \frac{\cancel{15}^{\cancel{3}}}{\cancel{5}\times\cancel{3}} = 3$$

भिन्न का जोड़-घटा

अब एक दूसरा क्षेत्र लें जिसमें भी बच्चे काफी त्रुटियां करते हैं। भिन्न को जोड़ते (घटाते) समय सबसे सामान्य गलती है, हर को हर से और अंश को अंश से जोड़ना (घटाना)। यह गलती बच्चों के उत्तरों में से लिए गए निम्नलिखित नमूनों में भी देखी जा सकती है।

1 $\frac{3}{5} + \frac{2}{7} = \frac{5}{12}$

2 $\frac{5}{6} - \frac{1}{6} = \frac{4}{0} = 4$

3 $\frac{2}{7} + \frac{2}{5} = \frac{2}{12}$

4 $\frac{23}{39} = \frac{20}{30} + \frac{1}{9} + \frac{1}{9} + \frac{1}{9}$

इसमें रोचक बात यह है कि (1), (2) व (4) को हल करते समय तरीके में बदलाव हो रहा है। (2) में हर को घटाने पर छात्रा को $6-6=0$ मिला है और अंश $5-1 = 4$ है। बच्ची को यहां कुछ कठिनाई महसूस होती है क्योंकि उसे शायद यह पता है कि हर '0' नहीं हो सकता। इसलिए वह उसे भूल जाती है और एक समस्या रहित उत्तर 4 लिख देती है। (3) में हर को जोड़ दिया गया है और क्योंकि अंश समान है इसलिए उसने उन्हें उत्तर में वैसे ही शामिल कर लिया है। यह हो सकता है उसे समान हर के भिन्नों को जोड़ने की याद आ गई हो। समान हर के भिन्न के जोड़ में हर वैसे ही लिखा जाता है और अंश जोड़ दिए जाते हैं। शायद इस बच्ची ने हर और अंश की भूमिका को उलट दिया है और यह अति सामान्यीकृत धारणा स्वयं कायम की है कि जो समान है उसे वैसे ही लिखना है और जो समान नहीं है

उसे जोड़ देना है। (4) में बच्ची ने शायद इस 'गुर' को इस कदर आत्मसात कर लिया है कि वह इसे दिए गए भिन्न को सरल करने के लिए उपयोग कर रही है। साथ ही उसे शायद समान हर वाली भिन्न जोड़ना आता है। इसलिए उसने

$$\frac{3}{9} = \frac{1}{9} + \frac{1}{9} + \frac{1}{9}$$

लिखा है।

धनात्मक एव ऋणात्मक संख्याएं

आखिर में हम धनात्मक व ऋणात्मक चिन्हों वाली संख्याओं के साथ काम करने में हुई त्रुटियों को देखते हैं। एक सामान्य गलत धारणा यह है कि दो ऋणात्मक संख्याओं को जोड़ने (या गुणा करने) पर धनात्मक (या ऋणात्मक) परिणाम आता है, जैसे:

$$-3 -5 = +8$$

अक्सर यह तब होता है जब बच्ची यह नियम सीख लेती है कि दो ऋणात्मक संख्याओं का गुणा धनात्मक उत्तर देता है। वह इस नियम का 'गलत' स्थान पर उपयोग करती है। दूसरी ओर यह जानते हुए कि

$$-3 - 5 = -8$$

बहुत-सी छात्राएं इसी तर्क के आधार पर

$$(-3) \times (-5) = (-8)$$

तक पहुंचती हैं।

बच्चों के लिए चिन्ह वाली संख्याओं को सीखने में बहुत बड़ी अवधारणात्मक 'कमज़ोरी' संक्रियाओं के चिन्ह (+ जोड़ का व – घटाने का) को संख्याओं के चिन्ह (+ धनात्मक के लिए और – ऋणात्मक संख्याओं के लिए) से अलग-अलग न कर पाना है।

यह बात $7+ (-3) = 10$ में देखी जा सकती है। यहां बच्चों ने संक्रियात्मक चिन्ह को तो जाना है और काम में लिया है परन्तु संख्यात्मक चिन्ह को छोड़ दिया है।

इसी का एक और रूप है:

$$7+ (-3) = -10$$

यहां पर उसने शुरू में 3 के सामने लगे संख्यात्मक चिन्ह को शामिल नहीं किया और फिर उसको शामिल करके आखिर में जोड़ के पहले लगा दिया है। इसी प्रकार की गलती घटाने में भी होती है जैसे:

$$7- (-3) = 4$$

गलतियां होने का एक महत्वपूर्ण गुण है कि कोई गलती सीधी व स्पष्ट स्थिति में सामने आए यह ज़रूरी नहीं है, किन्तु वह किसी अपेक्षाकृत जटिल व अप्रत्यक्ष स्थिति में सामने आ सकती है। उदाहरण के लिए एक बच्ची को यह मालूम हो सकता है कि

$3 - 7 = - 4$ या,

$-4 + 2 = -2$ और वो फिर भी निम्न त्रुटियां कर सकती है:

अ: $-4+2+10 = 16$

जहां उसने $-4+2 = 6$ लिया है।

ब: $3-7+10 = 14$,

जहां उसने 7 और 3 का फर्क लेकर 10 में जोड़ दिया है।

स: $3-7-10 = 4-10 = 6$

जहां दोनों चरण में उसने संख्याओं के बीच भीतर की गणना की है।

शुरू कहां से करें

आखिरी चरण तक पहुंचने के लिए किसी बीच के एक परिणाम को संभाल कर रखने की दिक्कत बच्चों के अवधारणात्मक भ्रमों को सामने ले आती है और ऊपर दर्शाई गलतियां पैदा हो जाती हैं। यही बात दूसरे क्षेत्रों में भी पाई जाती है। जैसे कि बच्ची संक्रियात्मक चिन्हों के क्रम पर ध्यान देते हुए

$$5+3\times4 = 10$$

$$4\times15-10 = 20$$

भी लिख सकती है।

उपरोक्त अनुच्छेदों में हमने विभिन्न प्रकार की त्रुटियों पर बातचीत की है। यह सब उपस्थित परिस्थितियों से जूझने के लिए बने तरीके हो सकते हैं। बच्ची कोई नियम, कोई परिभाषा या कोई अवधारणा जिसकी सूत्र के किसी चरण में उसे ज़रूरत है, भूल जाती है। ऐसी स्थिति में इस बात का अहसास करते हुए कि वह कुछ भूल रही है, बच्ची नियम का अपना ही रूप गढ़ कर उपयोग कर लेती है या फिर कोई दूसरी ही अवधारणा या नियम लागू कर लेती है। इसकी वजह से गलतियां होती हैं और हर बच्चे द्वारा अपनाया गया विकल्प ज़्यादा स्वाभाविक, ज़्यादा नैसर्गिक, ज़्यादा लुभावना और ज़्यादा आसान होता है। हमें यह पहचानने की ज़रूरत है कि बच्ची अपने पिछले अनुभवों के आधार पर सामान्यीकरण करने की कोशिश करती है और ऐसा करने में कई बार वह अधूरा अथवा कई बार गलत सामान्यीकरण भी करती है। बच्ची द्वारा की गई त्रुटियों को नकारने या उन पर सिर्फ गलत के निशान लगाने के स्थान पर बच्चों के उत्तर के पीछे छिपे हुए तर्क को पहचानना शिक्षकों को बच्चों को सिखाने में मदद करने में उपयोगी होगा।

एच. सी. प्रधान: मुंबई स्थित होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एज्यूकेशन में प्राथमिक गणित के समन्वयक हैं।

यह लेख Edcil दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' मई -जून 2001 से लिया गया है।

पुस्तक समीक्षा

'दादी ने की बुनाई'

प्रकाशक: नेशनल बुक ट्रस्ट
मूल्य: 16 रुपए

कमलेश चंद्र जोशी

बच्चों के लिए पठन सामग्री बुनना एक कठिन काम है। अक्सर हम बच्चों की जो सामग्री पढ़ते हैं, उसके 'फन्दे' बिखरे-बिखरे से मिलते हैं। इन 'फन्दों' में बच्चों की सोच के वे सब 'पैटर्न' जो उनके वास्तविक अनुभवों, कल्पना या फैन्टेसी से आते हैं, हमें देखने को ही नहीं मिलते। इसलिए अक्सर अधिकतर सामग्री ढीली-ढाली व उद्देश्य-विहीन नज़र आती है।

बच्चों के लिए सार्थक व उद्देश्यपूर्ण सामग्री तैयार करने के लिए हमें बच्चों की आम ज़िन्दगी के अनुभवों को महसूस करना होता है, उनके काल्पनिक संसार को समझना होता है। इसे समझने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों की अच्छी सामग्री पढ़ें, उसे आत्मसात करें। इसके साथ उस सामग्री की बुनावट में इस्तेमाल किए गए कुछ पैटर्नों को पहचानें। जब हम इन्हें पहचानेंगे तभी हम खुद बच्चों के लिए कुछ अच्छा बुन पाएंगे व बच्चों की अच्छी सामग्री को समझ पाएंगे। यही समझ बनाने के लिए हाल ही में छपी पुस्तक 'दादी ने की बुनाई' को पढ़ा जाए और उसके 'पैटर्न' को पकड़ने की कोशिश की जाए।

यह मूलत: कविता पुस्तक है जिसमें कहानी समाई हुई है। इस कविता में कहानी की शुरुआत होती है दादी के शहर आने से। यहां यह जानना ज़रूरी है कि हालांकि है दादी, हम कह सकते हैं बूढ़ी दादी, लेकिन दादी की कल्पना अद्भुत है; बिल्कुल बचपना लिए हुए। जबकि हम जवान होते ही बच्चों पर अपना 'बुढापा' बघारने लगते हैं –

'यह मत करो, वह मत करो। जैसा करोगे, वैसा भरोगे। पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे-कूदोगे बनोगे खराब।' और पता नहीं क्या-क्या? लेकिन यह दादी बच्चों को समझने के मामले में बहुत 'मैच्योर' है। वह बच्चों जैसी कल्पना के पैटर्न बुनती है। इन पैटर्नों के चटख काल्पनिक रंग किताब को सबके लिए पठनीय बनाते हैं।

वापस कहानी की शुरुआत पर लौटते हैं....... तो दादी शहर पहुंचती है, इसका वर्णन कविता में सुनना है तो सुनिए –

दादी एक दिन शहर को आई,
चारों तरफ नज़र दौड़ाई।
एक छड़ी और एक ही झोला
दो सलाइयां, ऊन का गोला,
साथ यही बस लेकर आई।

हमें ताज्जुब इस बात का है कि दादी के पास सामग्री बहुत कम है, ज़्यादा ताम-झाम नहीं है, लेकिन तब भी वह बच्चों के लिए बढ़िया सामग्री बुनती है। दादी क्योंकि अकेली होती है, थकी होती है, नंगे पैर सूज गए होते हैं इसलिए वह सबसे पहले अपने लिए चप्पल बुनती है। हम समझें चप्पल बिल्कुल निर्जीव है, बेजान। लेकिन बच्चों की कल्पना इन चप्पल जैसी बेजान चीज़ों में भी अपने प्राण फूंकती है। याद करें, बच्चों की संजोई टूटी-फूटी चीज़ें, जिनका उनके लिए अत्यन्त गहरा अर्थ होता है। वे इन चीज़ों की जोड़-तोड़ से बहुत-कुछ बनाते हैं।

सबसे पहले दादी चप्पल बुनती है फिर टाट, चटाई बुनती है....... कविता में आगे बुनी गई चीज़ों की लम्बी लिस्ट है। इसके साथ उस बुनावट में कसावट है और इस बुनावट में हमें 'पैटर्न' खिलता हुआ दिखता है, बच्चों की कल्पना के रंग बिखेरता हुआ।

कविता में कहानी है और कल्पना की ओट कल्पना है, लेकिन यह हमें बांधे रखती है। कहानी में 'टर्न' आता है, जब दादी अपने पोता-पोती को बुनती है और उन्हें स्कूल भेजना चाहती है। लेकिन टीचर कहते हैं –

"बच्चे ये ऊन के,
आ नहीं सकते हमारे स्कूल में
लिखा यही रूल में।"

यहां कल्पना टकराती है यथार्थ से। आगे की कहानी में कहीं कल्पना हावी है तो कहीं यथार्थ। यथा – दादी का बच्चों का दाखिला न होने पर मेयर के पास जाना, हवाई जहाज़ बुनना, राष्ट्रपति के पास जाना आदि। इस कल्पना व यथार्थ के मिश्रण में कहानी 'रिवर्स' होती है और दादी की बुनाई उधड़ती है। बच्चों का कल्पना संसार उधड़ता है लेकिन तब भी बाकी रहता है एक भीना-भीना अनुभव जो हमारे लिए अजीब-सी अकुलाहट पैदा करता है; और हमें लगता है कि अभी

भी सब कुछ होना बचा रहेगा।" हां जी, दादी ने अभी बुनाई नहीं छोड़ी है। यह बच्चों के लिए आशा है, सांत्वना है – कहानी के खुशी-खुशी समाप्त होने की। देखें –

ढूंढ वह लेगी, जल्दी ही नई जगह,
बुनती थी जैसे वह फिर से बुनेगी।
पहले बुनेगी अपने पोता-पोती,
हंसेंगे, वे खेलेंगे, बिखरायेंगे मोती।
वे जो भी चाहेंगे, दादी बुनेगी,
उनकी हर बात वह खुश हो सुनेगी।
लोग होंगे वहां भले बहुत सारे,
ऊन के बुने बच्चे लगेंगे उन्हें प्यारे।
दादी को रहेगा न कोई मलाल,
बैठेगी प्रेम से डेरा वहीं डाल।
बुनेगी-बुनेगी बैठी वहां दादी,
इसी से खुश वह सीधी-सादी।

कुछ बातें और – 'दादी ने की बुनाई' की कहानी को कविता में बुना है, मूलतः हिब्रू भाषा में उरी ओरलेव ने। यहां इसका प्रयाग शुक्ल द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद, जो इडी लिविंस्टीन के अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित है, बेहतरीन है। हमें कहीं से नहीं लगता कि हम कुछ अनुदित पढ़ रहे हैं। वैसे भी प्रयाग शुक्ल हिन्दी के अच्छे कवि और कला समीक्षक हैं। बच्चों के लिए भी निरंतर कविताएं लिखते रहे हैं, इन्हें हम सब 'धम्मक-धम्मक आता हाथी' कविता से अच्छी तरह जानते हैं। उन्हें बढ़िया अनुवाद के लिए धन्यवाद। चित्रों की बात किए बिना हमारी बात भी अधूरी है। ओरा एटन के बनाए हुए पेन्सिल के रेखांकन बच्चों के लिए 'नेचुरल' टच लिए हुए हैं। जैसे – टेढ़ी-मेढ़ी कार, हेलीकॉप्टर, हंसते हुए ऊन के बच्चे आदि, जिन्हें हम देखें बार-बार।

अंत में, नेशनल ट्रस्ट को बधाई, जो एक और बढ़िया किताब उपलब्ध कराई।

कमलेश चंद्र जोशी: लखनऊ की नालंदा संस्था में कार्यरत हैं। बच्चों के साथ गतिविधियां करवाने में विशेष रुचि।

सिर्फ संदर्भ के ग्राहकों के लिए

एकलव्य द्वारा प्रकाशित विज्ञान मासिक

स्रोत

की वार्षिक सदस्यता पर विशेष छूट

सामान्य वार्षिक चन्दा 150 रुपए
संदर्भ के ग्राहकों के लिए 125 रुपए

चन्दा मनीऑर्डर या एकलव्य के नाम बने ड्राफ्ट से भेजें।
साथ में संदर्भ की ग्राहक संख्या का उल्लेख ज़रूर करें।

एकलव्य ई-7/453 एच.आई.जी. अरेरा कॉलोनी भोपाल-16

वर्ष 1999, 2000 और 2001 के

सजिल्द स्रोत

150 रुपए में उपलब्ध हैं।

डाक से मंगवाने पर 25 रुपए अतिरिक्त

विकास योजनाओं में इंसान का पता नहीं

महबूब उल हक

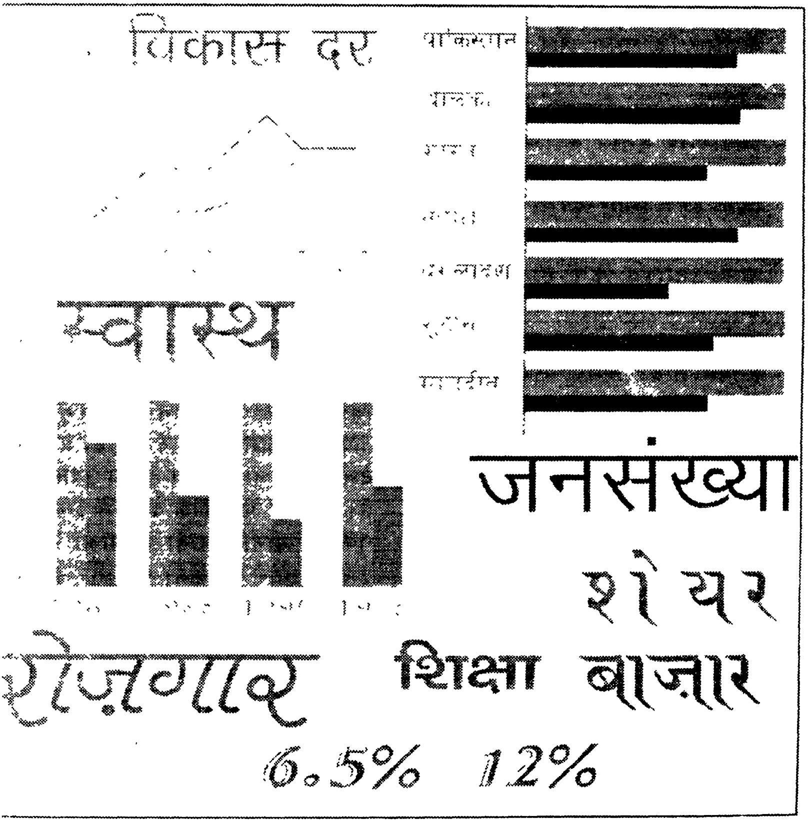

आम ज़िन्दगी में सबसे कठिन काम है उस चीज़ को खोजना जो एकदम सामने है। यह सवाल उठाने के लिए कि सेव ऊपर न जाकर नीचे क्यों गिरता है, न्यूटन की ज़रूरत पड़ी और उसने आगे जाकर गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का अविष्कार किया। आइन्स्टीन की ज़रूरत पड़ी यह बताने के लिए कि समय और दूरी सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं। और फिर उसने सापेक्षता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। यह बताने के लिए कीन्स की जरूरत पड़ी कि अगर हर व्यक्ति निवेश किए बगैर बचत करता है, तो पूरा देश बचत नहीं कर सकेगा क्योंकि कुल उत्पादन कम होता जाएगा। इसलिए जो बात एक व्यक्ति को लेकर आर्थिक रूप से विवेकपूर्ण मानी जाती है वह शायद समग्र स्तर पर उतनी विवेकपूर्ण न हो। इसी बात ने 'जनरल थ्योरी' को जन्म दिया। और दूसरे महायुद्ध के समय यह गर्जना करने के लिए चर्चिल की ज़रूरत पड़ी कि, "बच्चों को दूध पिलाने से बेहतर कोई निवेश नहीं है।"

इसी भावना के अनुरूप, विकास के कई दशकों के बाद हम एक ज़ाहिर-सी बात की पुनः खोज कर रहे हैं कि जनता के ज़रिए ही आर्थिक विकास होता है और जनता ही विकास का मकसद भी है। अक्सर यह सीधा-सादा सत्य धुंधला हो जाता है क्योंकि हम अमूर्त रूप में कुल योग के रूप में और समग्रता और संख्या के रूप में बातें करने के आदी हैं। सौभाग्य से इंसान इतने ढीठ हैं कि वे अपने को महज एक अमूर्तिकरण बन जाने नहीं देते तिस पर भी उन्हें बड़ी आसानी से भुला दिया जाता है।

विकास किन चीज़ों के ज़रिए होता है इसकी चर्चा करते समय अर्थशास्त्री अक्सर निवेश की पूंजी की चर्चा करते हैं। इस भौतिक पूंजी को ही सबसे ज़्यादा महत्व दिया जा रहा है और उत्पादन में सहायक कई अन्य तत्वों को छोड़ दिया गया है। मानवीय पूंजी की माप न तो तादाद के रूप में की जाती है और न उसकी गुणवत्ता के रूप में। उसकी तरफ जितना ध्यान दिया जाना चाहिए उतना नहीं दिया जा रहा है। कई समुदायों के पास वित्तीय पूंजी खूब होने के बावजूद वे अपना विकास नहीं कर पाए हैं। ओपेक देशों का ताज़ा अनुभव इसका उदाहरण है। इनमें से अधिकांश देशों में इन्सानी पूंजी - यानी इंसानी संस्थाओं और इंसानी हुनर की कमी थी और इसके बिना उन्हें संयोग से जो धन लाभ हुआ उसे वे वास्तविक विकास में नहीं बदल पाए। इनमें से कुवैत जैसे कुछ देश अपनी अस्थाई उपलब्धियों को स्थाई आय में बदल कर विकसित होने में कामयाब हुए हैं। लेकिन इस बदलाव के लिए बचत के अलावा, बल्कि उससे

भी बढ़कर इंसानी पहल और इंसानी पूंजी की ज़रूरत पड़ी।

एक जैसे प्राकृतिक संसाधन वाले समाज भी काफी अलग तरह से विकसित हुए हैं क्योंकि उनमें अलग-अलग किस्म की इंसानी काबिलियत थी। ज़रा आज आप अफ्रीकी, एशियाई और लेटिन अमरीकी देशों की विभिन्न समस्याओं और विकास के रास्तों को देखें। हमने देखा है कि पड़ोसी देशों ने एक जैसा ही निवेश किया है पर उन्होंने एकदम अलग परिणाम प्राप्त किए हैं। एक देश की वृद्धि दर 3 प्रतिशत है तो दूसरे की 7 प्रतिशत। असल में महत्वपूर्ण फर्क है: इंसानी कौशल और उद्यमिता और इन्हें पैदा करने वाली संस्थाएं। लेकिन हम अर्थशास्त्री बनकर बचत और निवेश, आयात और निर्यात के बारे में ही सोचते रहते हैं; और सोचते रहते हैं सकल राष्ट्रीय उत्पाद के बारे में। जो एक सबसे ज़्यादा सुविधापूर्ण अमूर्तिकरण ठहरा। जब हम यह विचार करते हैं कि विकास के माध्यम के रूप में इंसानों की क्या भूमिका है तो हमारी नज़र में वे बहुत पीछे रहते हैं।

ज़्यादा हैरानी की बात यह है कि इस बात को लोग नहीं मान रहे हैं कि लोग ही विकास का लक्ष्य हैं। सिर्फ पिछले दो दशकों से ही हमने सकल राष्ट्रीय उत्पाद से परे इस बात पर ध्यान देना शुरू किया है कि विकास किसके लिए है। पहली बार हम बेमन से यह मानने लगे हैं कि कई समुदायों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो बढ़ सकता है पर वहां के निवासियों का जीवन मुरझा सकता है। हमने लोगों की ज़रूरतों पर ध्यान देना और गरीबी के आंकड़े जमा करना शुरू किया है और समाज के धरातल के उन 40 प्रतिशत लोगों की स्थिति पर ध्यान देना शुरू किया है जिनकी, विकास के दौरान अकसर उपेक्षा कर दी जाती है। हमने लागत एडजस्टमेंट* के लिए चुकाए गए मूल्य का हिसाब लगाते समय उत्पादन में हुए नुकसान को ही नहीं बल्कि जनहानि और जनक्षमता की हानि को भी मापना शुरू किया है। हम अन्ततः इस सिद्धांत को स्वीकार करने लगे हैं कि विकास का सच्चा

** स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम का तात्पर्य तीन बातों से हैं: पहला स्थिरीकरण, दूसरा विश्व बाज़ार व्यवस्था के लिए खुलना, तीसरा घरेलू बाज़ार व्यवस्था को नियंत्रण मुक्त करना। इन आखरी दो पहलुओं को आमतौर पर ढांचागत सुधार या स्ट्रक्चरल रिफॉर्म कहा जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि ये उस ढांचे में या रूपरेखा में बदलाव करते हैं जिसमें कि अर्थव्यवस्था संचालित होती है। उदाहरण के लिए उद्योगों को लाइसेंस देने की प्रणाली को खत्म किया गया और आयात-निर्यात पर लगे प्रतिबंधों को हटाया गया। रही बात पहले बिन्दु की यानी स्थिरीकरण की, तो इसका तात्पर्य ऐसा वित्तीय प्रबंध करने से है ताकि देश को ऋण-संकट का सामना न करना पड़े या दूसरे देशों से लिए गए ऋणों को लौटाने में असमर्थ न होना पड़े।*

लक्ष्य मानव कल्याण है — सकल उत्पाद की वृद्धि नहीं।

लेकिन इस बात पर कम ही विचार किया गया है कि लोगों को एक साध्य मानकर और एक लक्ष्य मानकर विकास से कैसे जोड़ें। यदि लोगों को विकास के केन्द्र में रखा जाए तो आर्थिक योजना के लिए इसके क्या ठोस निहितार्थ होंगे। विकास योजना में, (एडजस्टमेंट) ताल-मेल की प्रक्रिया में और अंतर्राष्ट्रीय फैसलों में मानवीय आयाम को केन्द्र में रखने के निहितार्थों की खासतौर से जांच-पड़ताल करने की ज़रूरत है।

विकास योजना में मानवीय आयाम

यदि योजनाओं का लक्ष्य उत्पादन न होकर इंसान होते तो शायद ज़्यादातर विकास योजनाओं का चेहरा ही बदल जाता। उनमें कम-से-कम वे पांच खास तत्व होते जो आज की ज़्यादातर योजनाओं में नहीं हैं:

1. इन योजनाओं की शुरुआत इस बात से की जाती कि देश में कितना मानव संसाधन है, लोग कितने शिक्षित हैं, और उनमें कौशल कितना है। आय के बंटवारे की और गरीबी की क्या स्थिति है? कितनी बेरोज़गारी है और कितनों के पास ज़रूरत से कम आय वाले रोज़गार हैं? अलग-अलग इलाकों में शहरों की और गांवों की जनता का अनुपात क्या है और मानव विकास का स्तर क्या है? क्या देश में जनसंख्या की स्थिति में तेज़ी से बदलाव हुआ है, और उनकी आकांक्षाएं क्या हैं? दूसरे शब्दों में, समाज रहता कैसे है और सांस कैसे लेता है? अक्सर विकास योजना के पहले अध्याय में सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बचत, निवेश का योग रहता है और राष्ट्रीय आय के लेखे की दूसरी बातें रहती हैं। पर होना यह चाहिए कि पहले अध्याय में जनता की समग्र हालात का ब्यौरा हो। यदि हमें लोगों की पर्याप्त जानकारी नहीं है, तो हम लोगों के लिए योजना नहीं बना सकते। आंकड़े न मिलने का बहाना नहीं चलेगा। मानवीय तत्व का महत्व स्वीकार कर लेने के बाद तो लोगों से संबंधित ब्यौरा इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त राशि खर्च करनी चाहिए।

2. योजना के लक्ष्यों को पहले बुनियादी मानवीय ज़रूरतों के रूप में पेश किया जाना चाहिए और फिर बाद में उत्पादन और उपयोग के लक्ष्यों में उन्हें बदलना चाहिए। इसका मतलब यह है कि कम-से-कम औसत पौष्टिक आहार, शिक्षा, स्वास्थ, आवास और यातायात के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से बताना होगा। इस बात पर खुली चर्चा करनी होगी कि अभी प्रति व्यक्ति जितनी आय है और प्रति व्यक्ति जितनी आय आगे संभावित है, उसमें समाज की कितनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। तब बुनियादी

ज़रूरतों के लक्ष्य को उत्पादन और उपयोग की विस्तृत योजना बनाने में शामिल करना होगा। दूसरे शब्दों में, हमें साध्य से साधन की तरफ जाना होगा, न कि साधन से साध्य की तरफ।

3. विकास की योजना में मानवीय आयाम को जोड़ने के लिए यह ज़रूरी है कि उत्पादन और वितरण के लक्ष्यों का एकीकरण किया जाए और उन पर समान रूप से ज़ोर दिया जाए। विकास योजना में सिर्फ यह न हो कि क्या पैदा किया जा रहा है, बल्कि यह भी हो कि उसका वितरण किस प्रकार होगा; और राष्ट्रीय उत्पाद के समान वितरण के लिए क्या ठोस नीतियां लागू की जाएंगी। इसके लिए गरीबों, खासकर छोटे किसानों और छोटे उद्यमियों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए एक कार्य योजना और क्रियान्वयन की व्यवस्था बनाना ज़रूरी होगा। इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि रोज़गार की योजना उत्पादन की योजना के साथ बने क्योंकि गरीब समुदायों में वितरण की व्यवस्था सुधारने का असरदार तरीका रोज़गार के उपयुक्त मौके पैदा करना है।

यह ज़रूर है कि उत्पादन और वितरण की जो चिंता है उनके एकीकरण का मतलब है कि उत्पादक चीज़ों का, खासकर भूमि का, फिर से वितरण हो। अगर मौजूदा वितरण बहुत असमान है और तो जो लोग सबसे गरीब हैं उनके लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था हो।

4. मानव विकास की रणनीति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए जिससे कि लोगों की भागीदारी और आत्मनिर्भरता संभव बने। यह विडम्बना है कि लोगों को आर्थिक योजना का अंतिम लक्ष्य तो माना जाता है पर उन्हें उनके लिए बनने वाली योजना में पूरी तरह भाग नहीं लेने दिया जाता। इस बारे में कई विकासशील देश भ्रम की स्थिति में हैं। राष्ट्रीय योजनाओं में मानव विकास के बारे में ऊंचे-ऊंचे लक्ष्य रखे जाते हैं पर वे इसलिए धराशायी हो जाते हैं कि योजना बनाने और उन्हें लागू करने में हितग्राहियों को कुछ कहने का बहुत कम मौका मिलता है।

5. विकास योजनाओं में इनके क्रियान्वयन का विश्लेषण करने के लिए एक मानवीय परिप्रेक्ष्य होना चाहिए। योजना की प्रगति पर निगरानी रखने के लिए व्यापक सामाजिक और मानव विकास के संकेतक विकसित किए जाने चाहिए। जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर के साथ ही वार्षिक आंकलनों में मानवीय कहानी का भी उल्लेख हो कि कितने लोगों ने कितनी वृद्धि का अनुभव किया और तुलनात्मक और संपूर्ण गरीबी स्तर में हर साल कैसे

बदलाव आया। कुछ देशों में सकल राष्ट्रीय उत्पादन थम गया होगा लेकिन बहुत-सी मानव पूंजी निर्मित हुई होगी और इससे भावी वृद्धि की संभावना मज़बूत हुई होगी। इससे यह बात भी साफ होगी कि दूसरे देशों से तुलना करने के लिए सिर्फ वास्तविक वृद्धि के माप को आधार मानना ठीक नहीं है।

ये तत्व विकासशील देशों की हर आर्थिक योजना में बताए जाने चाहिए। योजना के पहले भाग में इन पांच तत्वों का विस्तार से उल्लेख होना चाहिए और परम्परागत राष्ट्रीय आय का लेखा और अन्य लक्ष्य योजना के दूसरे भाग में रखना चाहिए। यदि विकास योजनाएं इस तरीके से बनाई जाती हैं तो वे न केवल अधिक सार्थक होंगी बल्कि उन लोगों के द्वारा पढ़ी भी जाएंगी जिनके लिए वे बनाई गई हैं। एक फायदा यह भी होगा कि सभी योजनाएं एक-सी नहीं दिखेंगी। उनमें उनकी जनता और उनके समुदायों का रंगरूप झलकेगा। इससे उन पेशेवर सलाहकारों के अहं को भी धक्का लगेगा, जो इलेक्ट्रॉनिक बटन दबाकर विकास की योजनाओं के मॉडलों के बारे में बताते हुए एक देश से दूसरे देश में घूम रहे हैं।

ये बदलाव छोटे नहीं हैं। ये बुनियादी हैं। और हालांकि कठिनाइयां ढेर सारी आ रही हैं पर काम चुनौती भरा, उत्तेजनापूर्ण और उपयोगी है। हमें याद रखना चाहिए कि इनमें से कई कठिनाइयों का सामना तब किया गया था जब राष्ट्रीय आय के लेखे का शुरुआती ढांचा बनाया जा रहा था। इसलिए शुरुआती कोशिशों की कठिनाइयां हल होने के बाद मानवीय जोड़-घटा का ब्यौरा भी सामान्य बात हो जाएगी।

एडजस्टमेंट प्रक्रिया में मानवीय आयाम

कुछ समय से इस बात पर काफी बहस चल रही है कि क्या एडजस्टमेंट प्रक्रिया का मानव विकास से ताल-मेल है या नहीं। इस बहस का निराकरण करने का समय हो चुका है—एडजस्टमेंट की कोई भी प्रक्रिया सफल हो ही नहीं सकती अगर वो मानव विकास को बढ़ावा न दे।

एडजस्टमेंट की नीतियों और वृद्धि का मानव विकास से कथित टकराव पिछले दो सालों से अंतर्राष्ट्रीय चर्चाओं में छाया हुआ है। अवधारणात्मक स्तर पर यह कुछ अजीब-सा लगता है क्योंकि इस मुद्दे पर ज़रूरत से कम दिमाग खपाया गया है। एक विचार-धारा मानती है कि मानव विकास की बढ़ोतरी और एडजस्टमेंट नीतियां एक-दूसरे की विरोधी हैं और उन्हें राष्ट्रीय नीति के ढांचे में एक साथ नहीं रखा जा सकता। इस विचारधारा को मानने वालों का तर्क है कि एडजस्टमेंट के लिए कम अवधि वाली मांग का प्रबंधन ज़रूरी होता है, जबकि वृद्धि के लिए लम्बी अवधि वाली आपूर्ति का विस्तार चाहिए। उनका तर्क है कि एडजस्टमेंट की नीतियों के लिए कीमतों की विकृतियों को ठीक करने की, बाज़ार के मेकेनिज़्म की भूमिका बढ़ाने की और सरकारी हस्तक्षेप की भूमिका कम करने की ज़रूरत होती है। इसका मतलब है कि अर्थ व्यवस्था से सरकार ने जान-बूझकर अपने हाथ खींचे। इसके लिए विपरीत मानव विकास के लिए सरकारी हस्तक्षेप ज़्यादा चाहिए और सरकार की उपस्थिति भी ज़्यादा चाहिए, खासकर शिक्षा और स्वास्थ्य में।

आइए हम सावधानी से इस तर्क का परीक्षण करें क्योंकि एडजस्टमेंट की नीतियों और वृद्धि का मानव विकास के साथ कथित टकराव शायद वास्तविक न हो, सिर्फ दिखता ऐसा हो। आज अधिकांश विकासशील देशों में संसाधनों का आवंटन ठीक नहीं है। यदि मांग के प्रबंधन में सुधार हो जाता है, यदि कीमतों की तोड़-मरोड़ ठीक कर ली जाती है, यदि सरकार का (पब्लिक) गैरज़रूरी दखल कम हो जाता है और यदि अकुशल और भ्रष्ट आर्थिक और प्रशासनिक नियंत्रण खत्म

कर दिए जाते हैं, तो वृद्धि और मानव विकास दोनों के लिए ज़रूरी संसाधन मुक्त हो सकेंगे।

पाकिस्तान ने दिखाया है कि एडजस्टमेंट की सही नीतियों से मानव संसाधन विकास की ज़्यादा वृद्धि और उसके लिए ज़्यादा धन उपलब्ध हो सकता है। 1980 से लेकर 1986 तक एडजस्टमेंट अपनाते समय पाकिस्तान ने शिक्षा और स्वास्थ्य पर व्यय कम नहीं किया। उसमें उन्होंने बढ़ोतरी कर दी। यानी 1980 में जो सरकारी खर्च 8.6 प्रतिशत था वह 1986 में 14.2 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार पाकिस्तान ने न तो वृद्धि की कीमत पर एडजस्टमेंट किया और न ही मानव विकास की कीमत पर। उसका सकल घरेलू उत्पाद इस दौरान हर साल करीब 6.5 प्रतिशत बढ़ा।

1980-86 के दौरान पाकिस्तान की सरकार ने कई एडजस्टमेंट के ज़रिए बजट के 25 प्रतिशत संसाधन मुक्त किए। जिससे ऊर्जा, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरे मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के लिए ज़्यादा धन लगाया जा सके। कई सरकारी उद्योग जो 1970 में राष्ट्रीयकृत कर लिए गए थे और ठीक से नहीं चल रहे थे उन्हें निजी हाथों को सौंप दिया गया। आर्थिक नियंत्रण, सरकारी नियंत्रण, कीमतों की विकृतियां और सबसिडी कम कर दी गईं। कई सबसिडियां जो विकासशील देशों में चली आ रही हैं उनसे धनवान और ताकतवर लोगों को और साधारण शहरी उच्च वर्ग को फायदा होता है। ऐसी सबसिडियों के कम होने से देश ऐसे कार्यक्रम चला सकते हैं जो ज़्यादा लोगों को फायदा पहुंचाते हैं। एडजस्टमेंट और मानव विकास की वृद्धि एक-दूसरे के विरोधी

नहीं हैं, बल्कि इससे उपयुक्त कार्यक्रम और नीतियां बनाने के लिए एक बौद्धिक और नीतिगत चुनौती मिलती है और अवसर भी मिलता है। और यदि नीति के मोर्चे पर असफलता मिलती है तो उसे यह कहकर नहीं टाल देना चाहिए कि ये लक्ष्य अवधारणा के तल पर उपयुक्त नहीं थे। इन दो चिंताओं को मिलाने की चुनौती कुछ ऐसी है कि जैसे 1970 के दशक के शुरुआती सालों में वृद्धि की विचारधारा और वितरण की विचारधारा के विरोधी मतों को एक कर देने की। वृद्धि की विचारधारा यह मानती थी कि विकासशील देशों को सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि पर सबसे ज़्यादा ज़ोर देना चाहिए, नहीं तो वे गरीबी को ही फिर से बांटते रहेंगे। दूसरी विचारधारा का ज़ोरदार तर्क यह था कि यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि को ही महत्व दिया जाए तो आय और धन का गंभीर संग्रह होगा और राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ने के बावजूद मानवीय जीवन की गुणवत्ता कम हो जाएगी।

राष्ट्रीय नियोजन के ढांचे में वृद्धि और वितरण की नीतियों को एकीकृत करना बौद्धिक चुनौती है। ब्रिटेन के ससेक्स इंस्टीट्यूट में काम करने वाले एक समूह ने इस विषय का एक नया विश्लेषण किया। इस समूह को अधिकांश वित्तीय सहायता विश्व बैंक ने दी थी जब रॉबर्ट एस. मैकनमारा उसके अध्यक्ष थे। इस समूह के नेता होलिस चेनरी थे और हैंस सिंगर, डउले सीयर्स और रिचार्ड जाली जैसे अद्वितीय विद्वान थे। समाधान बहुत सरल था, जैसा कि हर हकीकत में होता है: हां, बढ़ी हुई पैदावार ज़रूरी है; लेकिन सवाल यह है कि बढ़ी हुई पैदावार किसकी और किसके लिए। उत्पादन के साधनों और सार्वजनिक सामाजिक सेवाओं के वितरण के लिए ही रणनीति नहीं बनाना चाहिए बल्कि ज़्यादातर गरीबों की उत्पादकता भी बढ़ाई जानी चाहिए।

इस बौद्धिक समाधान के साथ राष्ट्रीय नीति निर्माताओं ने विकास की योजनाओं की रणनीतियां फिर से बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। गरीबों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए गरीबी मापक और कार्यनीति बनाना योजना बनाने में उतना ही अहम हो गया जितना कि राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि की नाप और नीतियां। मैकनमारा ने अपनी दूरदृष्टि और सक्रियता से गरीबों की उत्पादकता बढ़ाने का झंडा उठाया और विश्व बैंक की सभी नीतियों एवं ऋण कार्यक्रमों को इस तरफ मोड़ दिया। अपनी ज़ोरदार दलीलों के जरिए उन्होंने सभी अन्य अंतर्राष्ट्रीय विकास संस्थाओं की नीतियों को और पूरे संसार की सोच को प्रभावित किया।

हमें अब मानव विकास के साथ वृद्धि और एडजस्टमेंट के सरोकारों के इर्द-गिर्द वैसा ही बौद्धिक माहौल पैदा करना है। इन ज़रूरी चिंताओं के बीच एक समन्वय बनाने के लिए शोध संस्थाओं को आगे बढ़कर कुछ गंभीर विश्लेषणात्मक काम हाथ में लेना चाहिए।

एक दूसरी चुनौती यह है कि राष्ट्रीय नीति में इस समन्वय को कैसे आगे बढ़ाया जाए। बिगड़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में उन मुद्दों के लिए लगातार बहाने ढूंढना विकासशील देशों के लिए शायद ही फायदेमंद हो जो मुद्दे मुख्यत: ढांचागत हैं और जिनका इलाज सिर्फ राष्ट्रीय योजना बनाने वाले और नीतियां बनाने वाले ही कर सकते हैं। कुछ समय पहले तंजानिया के राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे ने बड़ी निराशा से सवाल किया था कि क्या हम अपना कर्ज़ चुकाने के लिए अपने बच्चों को भूखा मरने दें। यह भी सवाल किया जा सकता है कि क्या हमें अपने रक्षा संबंधी खर्च को बढ़ाने के लिए अपने बच्चों को भूखा मारना चाहिए? एक दुखद सच्चाई यह है कि कम आय वाले विकासशील देशों में शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च 1972 में 21 प्रतिशत से घटकर 1982 में 9 प्रतिशत हो गया। जबकि उसी अवधि के दौरान विकासशील देशों का रक्षा व्यय 7 बिलियन डॉलर से बढ़कर 100 बिलियन डॉलर से ज़्यादा हो गया। इसलिए यह सवाल उठाना बिल्कुल सही है कि जब हमारे बच्चे आधी रात में दूध के लिए रोएं तो क्या हम उन्हें दूध के बदले बंदूकें दे दें?

घरु संसाधनों का आवंटन करने में विकासशील देशों की विवेकहीनता सिर्फ रक्षा संबंधी खर्च से ही ज़ाहिर नहीं होती। कई विकासशील देशों में सरकार की अकुशलता और भ्रष्टाचार का हिसाब अक्सर सरकारी बजट के 20 प्रतिशत से ज़्यादा हो जाता है। लेकिन विदेशी सहायता थोड़ी-सी घटाने के लिए बेहद टालमटोल की जाती है, जबकि आर्थिक प्रबंधन में थोड़ी-सी कसावट लाने पर सही वृद्धि और मानव विकास की ज़रूरतों के लिए काफी ज़्यादा संसाधन मिल सकते हैं।

जब पाकिस्तान ने बच्चों के टीकाकरण की ज़रूरत को पूरा करने का फैसला किया, तो उसने क्या किया? बच्चों की जीवनरक्षा की एक अत्यंत नाटकीय कथा यह है कि इस कार्यक्रम से पाकिस्तान के बच्चों के टीकाकरण की दर 1983 में 5 प्रतिशत से बढ़कर 1988 में 75 प्रतिशत तक हो गई और इस कार्यक्रम के कारण हर साल एक लाख बच्चे मौत के मुंह में जाने से बचते हैं। क्या इसके लिए पाकिस्तान ने ज़्यादा विदेशी सहायता ली? क्या उसने वृद्धि की दर कम की? नहीं। उसने किया यह कि एक महंगे शहरी

अस्पताल बनाने के काम को 5 साल के लिए टाल दिया। सिर्फ इसी से टीकाकरण अभियान का पूरा खर्च निकल गया।

और पाकिस्तान ने 70 प्रतिशत आबादी वाले ग्रामीण इलाकों में सार्वजनिक सेवाओं और बुनियादी ढांचे का विस्तार करने के लिए क्या किया? सार्वजनिक व्यय की राशि का सिर्फ 10 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों को जा रहा था क्योंकि गांव के अभिजात्य लोग भी शहरों में रहते हैं। इसके बावजूद पाकिस्तान ने शहरों को बीच-बीच में 2 घण्टे कम बिजली देकर 1983 और 1988 के बीच देश के आधे गांवों में बिजली पहुंचा दी।

ऐसे राजनीतिक फैसले कठिन होते हैं, लेकिन घरु प्राथमिकताएं बदलकर काफी कुछ काम पूरा किया जा सकता है। नियंत्रण को कम करके, सबसिडी घटाकर अकुशल उद्योगों पर हो रहा सरकारी खर्च कम करके और घरु प्राथमिकताओं में फेरबदल करके पाकिस्तान वृद्धि और मानव विकास दोनों में बढ़ोतरी कर सका। फिर भी पाकिस्तान के आर्थिक प्रबंधन में सुधार करने के लिए और संसाधनों को वृद्धि और मानव की तरफ मोड़ने के लिए काफी गुंजाइश है। जो लोग विकासशील देशों में इन लक्ष्यों के बीच बुनियादी टकराव देखते हैं वे यह मान लेते हैं कि संसाधनों का आवंटन पहले से बिल्कुल ही ठीक है। यह स्पष्ट है कि वे गलत हैं।

फैसलों में मानवीय आयाम

यदि विकास की नीति के फैसलों में मानवीय आयामों को पूरी तरह दिखाना है तो सबसे बड़ी लड़ाई

विकासशील देशों के सत्ता के गलियारों में लड़ी जाना है। लेकिन इस मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीय फैसलों में और आर्थिक सहायता देने वाले देशों के कार्यक्रमों तथा कार्यप्रणाली में भी शामिल किया जाना चाहिए। इस संबंध में कम-से-कम चार मुद्दे ध्यान देने योग्य हैं:

पहला: फिलहाल राष्ट्रीय विकास योजनाओं की सालाना समीक्षा और आर्थिक नियोजन में समेकित परामर्श को विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और क्षेत्रीय विकास बैंकों का विशेषाधिकार माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष एजेन्सियां – यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन, युनिसेफ, यू.एन.एफ.पी.ए, यू.एन.डी.पी., अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि जो सूक्ष्म स्तर पर मानव विकास के मुद्दों से ताल्लुक रखती हैं, को यह विशेषाधिकार नहीं है। और किसी देश के कामकाज की समीक्षा के लिए जो कंसोर्टियम और सलाहकार समूह हैं उनमें उन्हें सामान्यत: आमंत्रित नहीं किया जाता। यदि मानव विकास को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है तो विश्वबैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों को राष्ट्रीय आय के खातों और उत्पादन की योजना बनाने के व्यापक आर्थिक पहलुओं से मानव विकास के मुद्दों की तरफ जाना होगा। सत्तर के दशक में मेकनमारा के नेतृत्व में ऐसा होने लगा था पर इन दिनों वह रास्ता उतना निश्चित नहीं है। इसके अलावा संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों को विश्व बैंक के सालाना मिशनों और देशों के कन्सोर्टियमों और सलाहकार समूहों में उनकी नियमित हिस्सेदारी के ज़रिए इन सालाना समीक्षाओं और नीति परामर्श से जोड़ना ज़रूरी है। वर्तमान में ब्रेटनवुडस* और संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्थाओं में बड़ी खाई है जो वित्तीय और मानवीय मुद्दों के विभेद से प्रकट होती है। इस खाई को पाटने के लिए व्यावहारिक रास्ते खोजना कठिन न होगा।

दूसरा: कर्ज़ देने की शर्तों की रूपरेखा बदलना चाहिए। बजट और भुगतान के संतुलन के उपायों की मेक्रो इकॉनॉमिक शर्तों के अलावा, व ज़रूरी नीतिगत तथा संस्थागत बदलावों के लिए सेक्टर संबंधी शर्तों के अलावा न्यूनतम पोषण के मानक की रक्षा के

* *ब्रेटनवुड्स: वह जगह जहां दूसरे विश्व युद्ध के अंत की ओर जुलाई 1944 में यह तय करने के लिए एक सम्मेलन हुआ था कि विभिन्न देशों के बीच आर्थिक व्यवस्थाओं का कैसा तंत्र विकसित किया जाए जिससे पैसे के अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन के अल्पकालीन असंतुलन को संभाला जा सके व आपसी विनिमय की दरों को स्थिरता प्रदान की जा सके। इसका दूसरा मकसद युद्ध के विनाश से गुज़रे देशों को पुनर्रचना के लिए पूंजी उपलब्ध करवाना था। इस विचार विमर्श से दो संस्थाएं उभरीं – विश्व बैंक व आई. एम. एफ. यानी इंटरनेशनल मोनेटरी फंड।*

लिए, न्यूनतम रोज़गार स्तर बनाए रखने के लिए और शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए व्यय का स्तर तय करने के लिए भी शर्तें होनी चाहिए। विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को चाहिए कि वे मानवीय आयामों को शामिल करने के लिए अपनी शर्तों के पैकेज की समीक्षा करें और ऐसी समीक्षा में संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों को पूरी तरह जोड़ें।

तीसरा: मानव विकास कार्यक्रमों, जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य को कुल अंतर्राष्ट्रीय सहायता की तुलना में साधारणत: कम कर्ज़ दिया जाता है क्योंकि राष्ट्रीय विकास योजनाओं में ही इन्हें कम प्राथमिकता दी जाती है। वित्तीय संसाधनों की जो सीमाएं हैं उन्हें देखते हुए उदार ताकतों को चाहिए कि वे मानव संसाधन विकास के सेक्टरों के लिए ऊंची प्राथमिकता दिलाने के लिए अपने देश के घरू मोर्चे पर लड़ें। ये सेक्टर घरू संसाधनों का बहुत ज़्यादा उपयोग करते हैं और इनमें विदेशी मुद्रा का हिस्सा कम होता है और आवर्ती खर्च ज़्यादा होता है। वित्त मंत्री अक्सर उन्हें धन देने में आना-कानी करते हैं और उनकी आना-कानी को तब बल मिलता है जब अंतर्राष्ट्रीय दानदाता अपने आवंटन में इन सेक्टरों को कम प्राथमिकता देते हैं। यह साफ है कि सलाह और उसे व्यावहारिक जामा पहनाने के बीच एक मज़बूत कड़ी बनाने की ज़रूरत है।

चौथा: एक ठोस प्रस्ताव। मानव विकास की समस्याएं दक्षिण एशिया के ज़्यादा आबादी वाले देशों में बहुत सघन हैं। सात देशों – बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका ने सार्क नामक संगठन बना लिया है। इस क्षेत्र में एक बिलियन से ज़्यादा आबादी है जिसमें ज़्यादातर अशिक्षित हैं और पोषण स्तर नीचा है और मृत्यु दर ऊंची है। परम्परागत सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर के रूप में तो इस क्षेत्र की स्थिति अच्छी है पर मानव विकास के हिसाब से इसकी स्थिति खराब है। दुनिया के गरीबों का 80 प्रतिशत हिस्सा इस क्षेत्र में रहता है। क्यों न सन 2000 के लिए सार्क के लिए एक मानव विकास योजना तैयार करके उसे क्रियान्वित किया जाए?

राष्ट्रीय विकास की योजना बनाने वाले विशेषज्ञ अपने देश के पोषण स्तर, साक्षरता, स्वास्थ्य संकेतक और आबादी की वृद्धि के लक्ष्य तय कर सकते हैं जिसे सार्क की सालाना बैठक में स्वीकृत किया जाए। फिर सार्क की इस योजना के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और वित्तीय संसाधन प्राप्त किए जा सकते हैं। मार्शल प्लान* के दिन तो बहुत पहले चले गए पर ऐसा लगता है कि एक बिलियन से ज़्यादा आबादी के मानव विकास की एक व्यावहारिक

योजना औद्योगिक देशों के लोगों और अनिच्छुक विधि निर्माताओं का ध्यान ज़रूर आकर्षित करेगी। अगर यह सब इस बात से भी जुड़ जाए कि हर साल सैनिक खर्च में जो 20 बिलियन डॉलर से ज़्यादा खर्च हो रहे हैं उसमें आपसी सहमति से चरणबद्ध रूप से कमी करने के लिए सभी देश सहमत हो जाएं तो यह कितना ज़बर्दस्त होगा।

विकास के मानवीय आयाम का मतलब विकास की चर्चा में केवल एक अतिरिक्त चीज़ को जोड़ना नहीं है। यह एकदम नया नज़रिया है और विकास के बारे में सोचने के हमारे पारम्परिक तरीके को फिर से रूप देने का एक क्रांतिकारी तरीका है। सोच में इस परिवर्तन से मानवीय सभ्यता और प्रजातंत्र एक नई मंज़िल तक पहुंचेंगे। तब लोग विकास के अवशेष न होकर विकास का मुख्य उद्देश्य और विषय बन जाएंगे। तब वे एक भूली-बिसरी आर्थिक कल्पना न रहकर, एक ज़िन्दा और सक्रिय वास्तविकता बन जाएंगे; और विकास की प्रक्रिया के असहाय शिकार और गुलाम न रह जाएंगे बल्कि उसके मालिक बन जाएंगे।

विकास के कई दशकों के बाद अब आर्थिक विकास में लोगों की ऐसी सत्ता स्थापित करना एक उत्तेजक चुनौती है और इसका मतलब मानव विकास के एक नए नमूने की तरफ बढ़ना है।

* ***मार्शल प्लान:*** *वह योजना जिसके तहत अमरीका ने यूरोपीय देशों को दूसरे विश्व युद्ध के असर से उबरने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 'द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमरीका संसाधनों व संभावनाओं वाले एक समृद्ध देश के रूप में उभरा जिसकी अर्थ व्यवस्था विशाल थी व जिसकी भूमि पर युद्ध का कोई असर नहीं था।' यही समय था जब अमरीका रूस के प्रभाव व यूरोप में उभरते हुए वामपंथी दलों का प्रतिकार करना चाहता था।*

महबूब-उल-हक: (1934-1998) विख्यात अर्थशास्त्री एवं लेखक। उच्च शिक्षा कैम्ब्रिज एवं येल विश्वविद्यालय में हुई। दुनिया के मुल्कों से गरीबी कम करने के लिए विश्व बैंक की रणनीतियों को बनाने में रॉबर्ट मेकनमारा (अध्यक्ष विश्व बैंक 1970 -82) के साथ मिलकर काम किया। विश्वस्तरीय अनेक संस्थाओं को अपनी सेवाएं प्रदान की। सन् 1982-88 के दौरान पाकिस्तान में योजना एवं वित्त विभाग में मंत्री पद पर भी काम किया। 1990-95 के दौरान यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट के संस्थापक सदस्य एवं लेखक भी रहे हैं। इसी रिपोर्ट की तर्ज़ पर आजकल कई देशों में इस तरह की रिपोर्ट बनाई जा रही हैं। महबूब-उल-हक की कुछ अन्य किताबें हैं – द स्ट्रेटेजी ऑफ इकॉनोमिक प्लानिंग, द पॉवर्टी कर्टेन कोलंबिया।

अनुवाद: सुरेश मिश्र: इतिहास के पूर्व प्राध्यापक। वर्तमान में एकलव्य के भोपाल केन्द्र पर विकास एवं योजना के कामों से जुड़े हैं।

यह लेख **'रिफलेक्शन्स ऑन ह्यूमन डिवेलपमेंट'** लेखक: **महबूब-उल-हक**; प्रकाशक: **ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस** की किताब से अनुदित किया गया है।

जादुई कॉलर बटन

जे. बी. एस. हाल्डेन

मुझे लगता है कि आप सोचते हैं कि इन दिनों परियां नहीं पाई जाती हैं। और न ही भूत, डायन या जादूगर। पर हां, अब वे चित्रकथाओं में दिखने वाले परिधान पहने इधर-उधर नहीं घूमती-फिरती हैं। तितलियों के पंखों वाली छोटी-छोटी परियां चिमनियों पर बैठी हुए नहीं दिखती हैं। न ही नुकीले टोप पहने, बूढ़ी औरतें झाड़ू के डंडे पर सवारी करती और हरी बत्ती का इंतज़ार करती दिखती हैं। परन्तु वे आजकल कई और काम कर रही हैं। अच्छे जादूगर अभी भी जादूगरी करते रहते हैं जैसे रेडियो और रसायनों के ज़रिए। जब आप बीमार पड़ते हैं तो डॉक्टर आता है और कागज़ की छोटी-सी पर्ची पर नुस्खा लिख देता है, और दवा बेचने वाला आपको बोतल में भरकर कुछ दे देता है। यदि आप इससे ठीक हो जाते हैं तो इसका मतलब है कि वह छोटी-सी पर्ची 'चमत्कारी' थी और वह दवाई दरअसल एक जादुई द्रव। और इसी तरह आप विभिन्न स्थानों पर परियों से मिलते रहते हैं, जो अक्सर सामान्य मनुष्यों जैसी ही दिखती हैं।

यह सब पढ़कर शायद आप मुझसे पूछना चाहेंगे, "तुम यह कैसे जानते हो कि वे परियां हैं?" चलिए आपको

मैं ही बता ही देता हूं। दरअसल मैं कई बार परियों और जादूगरों को पहचान सकता हूं क्योंकि मैं स्वयं भी 'मेल्यूसाइन' नामक परी का वंशज हूं। उसने काउन्ट रेमोंडिन से आठ सौ वर्ष पूर्व विवाह किया था और उनके दस बच्चे हुए थे, सभी लड़के। हेनरी द्वितीय के बाद इंग्लैंड के सभी राजा मेल्यूसाइन के ही वंशज हैं। राजा हेनरी द्वितीय और उसके पुत्र रिचर्ड प्रथम व जॉन का स्वभाव बहुत गुस्सैल था। और उनके ज़माने के लोगों का कहना था कि परी का वंशज होने के कारण ऐसा स्वभाव था उनका। जब हेनरी नाराज़ होता था तो दांतों से अपने बिस्तर के कपड़े फाड़ डालता था, वैसे शांत रहने पर वह बहुत ही अच्छा राजा था। राजा जॉर्ज और मैं दोनों ही हेनरी द्वितीय के वंशज हैं। पर उसने ताज़ पाया और मैंने उसका गुस्सा। पर मेरा गुस्सा उतना बुरा नहीं है जितना राजा हेनरी का था। आप किसी के भी गुस्से से यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह थोड़ा-बहुत घिसे बिना सात सौ साल तक चलता रहेगा।

जिस अंतिम परी से मैं मिला वह वेण्डस्वर्थ में रहती है और जादूगरी के सामान की दुकान चलाती है। दुकान की खिड़की में आप हमेशा भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएं देख सकते हैं जैसे कलम, चाकू, मिठाइयां, बाल्टियां, छडियां, तराजू, गहने और पता नहीं क्या-क्या। दरअसल आप कभी भी परियों की दुकान में एक ही प्रकार की चीज़ें नहीं पाएंगे जैसे कि सब्ज़ी-भाजी वाले, दर्जी या मछली वाले की दुकान में होता है। और हां, परियां ज़्यादा बड़ी दुकानें नहीं रखतीं क्योंकि जादूगरी के सामान को बेचने के लिए दूसरों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। वे गलत किस्म के लोगों को सामान बेच सकते हैं।

मेरा मतलब है कि सात लीग वाले जूतों का बस ड्रायवर के लिए क्या उपयोग? और यही वह चीज़ है जिसकी डाकिए को खास ज़रूरत है। या सोचिए कैसा गजब हो सकता है अगर ट्रेफिक पुलिस वाले को कोई अंधेरे का लबादा या अदृश्य होने वाली टोपी बेच दे। वह अदृश्य हो जाएगा और सारी कारें, लारियां और बसें उसे कुचलते हुए निकल जाएंगी। इसके अलावा कोई भी उसे हाथ उठाए नहीं देख पाएगा। परन्तु अदृश्य होने वाली टोपी खिड़की साफ करने वाले के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि इस तरह वह प्रकाश को रोके बिना खिड़कियां साफ कर सकेगा। और यह बड़े दर्ज़ी की दुकान में काम करने वाले के लिए भी बहुत उपयोगी हो सकती है। वह स्वयं को अदृश्य बना स्त्री-पुरूषों के पुतलों को खिड़की में इधर-उधर सरका सकेगा। और जो भी उसे देखेगा, कहेगा 'क्या चतुर यंत्र है।' और उनमें से कुछ लोग आकर

नए कोट, पेंट, स्कर्ट, ब्लाउज़, टोप इत्यादि चीज़ें खरीद लेंगे।

मैं इस दुकान में इसलिए गया क्योंकि वह मुझे जादुई लगी और मैं एक नया बटन खरीदना चाहता था। पहले वाला बटन मैं गुमा चुका था इसलिए शर्ट के कॉलर को सीधा रखने के लिए कागज़ की क्लिप का उपयोग करना पड़ रहा था, जिसके नुकीले सिरे मेरी गरदन में गड़ रहे थे। काउंटर पर सौम्य-सी दिखने वाली एक महिला बैठी थी। उसके बाल सफेद थे पर उसके चेहरे पर झुर्रियां नहीं थी, जिनकी ऐसे बालों के साथ अपेक्षा होती है। मैंने उससे कहा कि मुझे एक बटन चाहिए क्योंकि मैं अपना पुराना बटन खो चुका हूं।

"क्या तुमने सिर्फ वही खोया है?" उसने पूछा।

"नहीं," मैंने कहा, "वास्तव में मैंने अपना आपा भी खो दिया है।"

"ओह", उसने उत्तर दिया, "मैं आशा करती हूं कि वह बहुत कीमती नहीं होगा। जब तुम अपना 'आपा' खो बैठते हो क्या करते हो? कुछ लोग अखबारों में विज्ञापन देते हैं 'गुमशुदा की तलाश, शुक्रवार 28 अगस्त को, ओल्डकेन्ट मार्ग पर, एक गुलाबी 'आपा' संतरी और नारंगी धब्बों सहित, सूचना दें। सूचना देने वाले को 'रेडियो टाइम्स' की जिल्दों के सेट से पुरस्कृत किया जाएगा।' और हां रोमन कैथोलिक, संत एंथोनी के सामने मोमबत्ती जलाएंगे जैसा वे हमेशा करते हैं जब उनकी कोई चीज़ गुम जाती है। और कुछ लोग 'लॉस्ट एंड फाउंड' में चले जाते हैं परन्तु वहां इतने सारे औरों के बीच वे अपने 'आपे' को पहचान नहीं पाते।"

"मैं सोचता हूं कि मैं अपने आपे को पहचान पाऊंगा, क्योंकि वह विशिष्ट है, करीब आठ सौ साल पुराना। वह मेल्यूसाइन नामक महिला का था। हां, उस पर कई स्थानों पर गड्ढे पड़े हैं पर वह बहुत ही वास्तविक आपा है, उन जैसा बिल्कुल नहीं जिस प्रकार के निकृष्ट प्रकृति वाले आजकल पैदा हो रहे हैं।"

"क्या तुमने इसे किसी पुरानी वस्तुओं की दुकान से खरीदा था?"

"ओह नहीं, वह तो पारिवारिक विरासत है।"

"अच्छा, मेल्यूसाइन के वंशज से मिलकर खुशी हुई। मैं उसे अच्छी तरह जानती थी, और मुझे यह सुनकर बहुत ही बुरा लग रहा है कि वो आपा गुम गया जो कभी उसका था। यद्यपि वास्तव में यह उतना आश्चर्यजनक नहीं है। उसका एक बेटा ज्यॉफ्री ग्रॉसडेन्ट (जिसका मतलब है बड़े दांत वाला) अक्सर अपना आपा खो बैठता था। अंत में उन्होंने उसके गले में पट्टा

डाल दिया था और लगाम से पकड़कर इधर-उधर ले जाया करते थे। यदि ज़रूरी हो तो मैं भी तुम्हारे लिए ऐसा कर सकती हूं। पर तब तक हम बटन के बारे में ही देखते हैं। यहां पर अदृश्य बटनों वाली तश्तरी है।''

उसने एक तश्तरी उठाई जो खाली दिखाई दे रही थी।

''बहुत, बहुत धन्यवाद, पर मुझे नहीं लगता कि मैं अगली सुबह उसे ढूंढ पाऊंगा। और फिर अदृश्य बटन बहुत उपयोगी नहीं हो सकता जब

तक कि आपके कपड़े भी अदृश्य न हों। बिल्कुल अच्छा नहीं लगेगा अगर एक अकेला कॉलर का बटन हवा में सड़क पर चलता नज़र आए।''

''अच्छा, फिर तुम्हारे लिए न खोने वाला ठीक रहेगा। उसके लिए चार पेन्स और तीन फारदिंग्स लगेंगे।''

मैं भाग्यशाली था कि मेरे पास चार पेन्स और तीन फारदिंग्स थे। क्योंकि परियां इस प्रकार की बातों के प्रति बहुत सजग रहती हैं। मेरा मतलब, यदि मैं तीन फारदिंग्स के बदले आधी पेनी और एक फारदिंग्स का प्रस्ताव रखता तो मुझे लगता है कि वो दुकान ही गायब हो जाती और मैं अपने आपको मिस्टर ग्लेडस्टोन की मूर्ति से बातें करते हुए पाता।

पर यदि आप उस प्रकार के व्यक्ति नहीं हैं जो अपने पास फारदिंग्स रखते हैं तो अच्छा हो कि आप परियों की दुकान में जाएं ही नहीं। ज़्यादातर लड़के और लड़कियां अपने पास फारदिंग्स रखते हैं। पर जब वे बड़े हो जाते हैं तो समझते हैं कि फारदिंग्स फालतू की चीज़ हैं। यह बात पूरी तरह गलत है, क्योंकि इंग्लैण्ड में फारदिंग्स ही असली जादुई मुद्रा है, सिवाय चांदी की पेन्नी के, जिन्हें कई सदियों पहले ही बनाना बंद कर दिया गया था।

आखिरकार मैंने अपने लिए कॉलर का बटन ले लिया और वह अभी तक मेरे पास है। और मैं मानता हूं कि जब मैं मरूंगा तब भी वह मेरे साथ ही दफनाया जाएगा, क्योंकि यदि वे उसे मेरे कॉफिन में नहीं रखेंगे तो वह शव यात्रा के पीछे-पीछे सड़क पर कूदते हुए आ जाएगा, और जिन लोगों को रोना चाहिए वे हंसने लगेंगे। मैंने तीन-चार बार उस बटन को खो देने की कोशिश की। एक बार तूफान के दौरान, जब खूब तेज़ पानी बरस रहा था, मैंने उसे जाली में से नाली में फेंक दिया। लगभग आधे घंटे बाद जब मैं हाथ धो रहा था तब वह सिंक के नल में से कूदकर बाहर आ गया, एकदम गीला, और उस बटन से झगड़ने लगा जिसे मैंने उसके स्थान पर लगा लिया था। आपस में झगड़ते हुए उन्होंने मेरी गरदन में छेद ही बना दिया था।

एक बार जब मैं अफ्रीका में था तब एक शतुर्मुर्ग उसे खा गया था, और मैंने सोचा कि अब तो यह गया। परन्तु अगली सुबह उसे मैंने अपने अंडे के नाश्ते में पाया, जो नाश्ता मैं दो अन्य व्यक्तियों और कुत्ते के साथ मिल बांटकर खा रहा था। मुर्गी के अंडे के बजाए शतुर्मुर्ग के अंडे का यही फायदा है कि एक ही अंडा पूरे परिवार के भोजन के लिए काफी होता है।

एक बार वह अटलांटिक महासागर के बीच तब जा गिरा जब परिचारक

मेरे कपड़ों की तह लगा रहा था। मैं जानता हूं कि आप सोच रहे होंगे कि मैं कहूंगा कि अपना बटन मैंने राजा पालीक्रेट्स की अंगूठी की तरह अपने रात्रि भोजन की मेज़ पर उस मछली में पाया जिसे मैं खा रहा था। पर आप बिल्कुल गलत हैं। मैंने उसे इससे कहीं ज़्यादा जल्दी पा लिया। आप जानते हैं कि वे लोग जहाज़ के पीछे टीन की एक मछली जैसे यंत्र का उपयोग करते हैं जिससे उन्हें पता चल सके कि वे एक दिन में कितनी दूरी तय कर चुके हैं। यह मछली पानी में गोल-गोल घूमती रहती है। उससे रस्सी में बल पड़ते जाते हैं और वह रस्सी जहाज़ पर एक घड़ी जैसे यंत्र को घुमाती रहती है, जिससे जहाज़ के कप्तान और मल्लाह देख सकते हैं कि वे एक घंटे या एक दिन में कितनी दूर पहुंच गए हैं। अचानक इस रस्सी ने ऐंठना बंद कर दिया जिससे वे सब समझ गए कि इस टीन की मछली के साथ कुछ गड़बड़ हुई है क्योंकि जहाज़ रुका नहीं था, लगातार आगे बढ़ा जा रहा था। उन्होंने उस टीन की मछली को ऊपर खींचा और पाया कि वह एक कटलफिश में उलझ गई थी जिसने अपने नौ हाथों से उसे पकड़ रखा था और उसके दसवें हाथ में मेरा बटन चिपका हुआ था।

पर जहाज़ पर एक हज़ार यात्री सवार थे और उस बटन पर ऐसा कुछ भी नहीं लिखा था जिससे पता चल सके कि वह बटन मेरा है। इसलिए जहाज़ पर पहुंच जाने के बाद भी वह मुझे नहीं मिलता, यदि पांच मिनट बाद ही एक परिचारक मेरे केबिन में आकर अभी-अभी पकड़ी गई कटल-फिश को देखने के लिए बुलाने नहीं आता। मैं कोई जीव शास्त्र का प्राध्यापक तो हूं नहीं, पर जहाज़ पर एक ऐसा यात्री था और कप्तान धोखे में यह मान बैठा कि मैं ही हूं वह यात्री जो उस कटलफिश का लेटिन नाम बता सकता हूं। मैं उसे कटलफिश का नाम तो नहीं बता सका पर मुझे मेरा बटन ज़रूर मिल गया।

इसके बाद मैं मज़े के लिए उसे खोने की कोशिश करने लगा। एक बार मैं एक संकरी सड़क पर कार चला रहा था कि मैंने एक सूचना देखी 'स्टीम रोलर काम पर', तो मैंने अपनी गति धीमी की। यदि मैं यह सूचना देखता कि 'स्टीम रोलर खेल पर' तो मुझे शीघ्रता से वहां से भाग जाना चाहिए था, क्योंकि धमाचौकड़ी करता हुआ स्टीम रोलर सिर्फ मज़े के लिए मेरे पैर पर चढ़ सकता था, ऐसे में मेरे पैर एकदम चपटे हो जाते। स्टीम रोलर जिस किसी चीज़ पर से गुज़र जाता है वह चीज़ चपटी हो जाती है। कल ही अखबार में मैंने एक ऐसे व्यक्ति का विज्ञापन पढ़ा था जो चपटे पैरों का इलाज करता है। यानी कि यदि स्टीम

रोलर आपके पैरों पर चढ़ जाए तो आपको उस व्यक्ति के पास जाना होगा।

पर यह स्टीम रोलर काफी मेहनत से काम में लगा हुआ था इसलिए मुझे अपनी कार को रोकना पड़ा। मैंने सिर्फ मज़े के लिए ही सोचा कि देखते हैं क्या होगा यदि मैं अपना बटन स्टीम रोलर के सामने फेंक दूं। पर मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, क्योंकि जब सामने का विशाल चका उस पर चढ़ा तो बटन का तो कुछ नहीं बिगड़ा पर चके में भयंकर आवाज़ के साथ मोटी-सी दरार पड़ गई और वह दो हिस्सों में चटक गया। मैंने कहा कि मैं नये चके का भुगतान कर दूंगा क्योंकि यह मेरी ही गलती थी। पर जिसने उस स्टीम रोलर को बनाया था वो मुझे ऐसा नहीं करने दे रहा था क्योंकि उसे लग रहा था कि सब लोग उस पर हंसेंगे और कहेंगे, 'स्मिथ के स्टीम रोलर मत खरीदो। वे एक कॉलर के बटन को भी नहीं पिचका सकते।'

एक बार मैंने उस बटन को एक पादरी को दे दिया जो मेरे प्रति बहुत दयालु था। आप अवश्य ही जानते होंगे कि पादरीगण गलत ढंग से अपने कॉलर पहनते हैं इसलिए उनके पीछे का बटन आगे और आगे का बटन पीछे होता है। मेरे बटन देने के दो घंटे बाद जब उसने बाइबल में से एक पंक्ति पढ़ी जिसमें कहा गया था 'पहला अंतिम है और अंतिम पहला'। यह पढ़ते ही अचानक उसने महसूस किया कि उसकी कॉलर इस तरह घूम गई कि खुला हिस्सा सामने की ओर आ गया, ठीक साधारण मनुष्यों की भांति। इसलिए उसने कहा, 'यह बटन मेरे लिए कुछ ज़्यादा ही चतुर है। मैं ऐसा बटन चाहता हूं जो जहां रख दिया जाए वहीं रुका रहे।' और उसने मुझे उसे वापस भेज दिया। इसलिए अब मैं महसूस करता हूं कि मुझे उसे अपने पास मृत्युपर्यन्त रखना होगा, और शायद उसके बाद भी।

ओह, मैं तुम्हें वे सारी बातें बताने बैठ गया हूं जो मेरे दुकान छोड़ने के बहुत बाद घटी। काश मैं भी उन अत्यंत बुद्धिमान लोगों की तरह होता जो लम्बी-लम्बी कहानियां एकदम वैसे ही लिख पाते हैं जिस क्रम में वे सब घटनाएं घटी होती हैं। मैं तो उस क्रम में घटनाएं सुनाता जा रहा हूं जैसे-जैसे वे मुझे याद आती जा रही हैं।

बटन खरीदने के बाद काऊंटर पर बैठी महिला से मैंने उसका नाम पूछा क्योंकि मैंने सोचा जो मेरी लकड़दादी की लकड़दादी मेल्युसाइन को जानती है वह भी काफी बूढ़ी औरत होगी और उसने बहुत सारी रोचक घटनाएं देखी होंगी।

"तुम मुझे मिस वेंडल पुकार सकते हो", उसने कहा, "यद्यपि मुझे नाम

पाने के लिए कई हज़ार साल तक इन्तज़ार करना पड़ा था। और मेरे अपने समय में मेरे दो-तीन अलग नाम थे। मैं एक नदी में रहा करती थी, पर पिछली सदी में वह बहुत गंदी हो गई थी। मैं आशा करती हूं कि बहुत जल्द ही मैं फिर वहां चली जाऊंगी। मैं नहीं सोचती कि अगले दो-तीन हज़ार वर्षों में लंदन में ज़्यादा कुछ बचा रहेगा।''

''यह आपका अहसान है कि आप ऐसी दुकान चलाती हैं जहां कोई व्यक्ति इतनी उपयोगी सामग्री खरीद सकता है।''

''ओह, मैं हमेशा लोगों को सही किस्म की चीज़ें देती रहती हूं। वे तब भी वहां आते रहते थे जब मैं नदी में रहा करती थी। आठ सौ वर्ष पहले वे मुझे परी कहा करते थे, उससे पहले रोमन मुझे जलपरी कहा करते थे, ताम्रयुग के लोग, जो वास्तव में इंग्लैण्ड में रहने वाले सबसे अच्छे लोग थे, मुझे 'वासी' कहते थे। पर मैं आजकल उतनी मददगार नहीं रही, जितना मैं उस ज़माने में हुआ करती थी। विम्बलडन में एक भयंकर ड्रेगन रहा करता था। बहुत से योद्धाओं ने उसे मारने की कोशिश की, पर वे कामयाब न हो सके। वह उन पर आग उगलता था और उनके हथियारों को इस तरह पिघला देता था जैसे चोर की आग उगलने वाली नली टीन की कुप्पी को पिघला देती है। एक दिन उसने एक योद्धा का उसके हथियारों समेत वेंडल तक पीछा किया और धधकते कवच समेत उसे नदी में धका दिया।''

''धधकते कवच से कैसी फुंफकार उठ रही थी। भाग्यवश मैं वहीं थी और योद्धा के थोड़ा ठंडे होने पर मैंने उसे बाहर खींच निकाला। उसके बाद

मैंने उसे खूब फटकार लगाई और पूछा कि साधारण भाले और बख्तर से ड्रेगन जैसे भयंकर और जादुई जानवर को वो कैसे मारने वाला था। फिर अगले सप्ताह उसने एसबेस्टॉस का बख्तर पहन, भाले के स्थान पर दो अग्नि-शामक यंत्रों के साथ ड्रेगन पर हमला कर दिया। और वह ड्रेगन का अंतिम दिन था। पहले अग्निशामक से उस ड्रेगन के मुंह की आग बुझाई और दूसरे से उसे मार डाला। वास्तव में उन दिनों सामान्य अग्निशामक यंत्र नहीं पाए जाते थे, बस केवल जादुई ही होते थे। वह योद्धा मेरा बहुत आभारी हुआ और उसने मेरे खाली किनारों पर बहुत सी फूलों की झाड़ियां और साथ ही कुछ पेड़ भी लगाए।

पर अब वह सब कुछ खत्म हो गया। इसी कारण मेरे बाल सफेद हो गए हैं। पर मैं आशा करती हूं कि एक दिन मेरे बालों में रंग फिर से लौट आएगा। पर मुझे आभारी होना चाहिए कि अभी तक मेरी नदी को वेस्टबोर्न की तरह पाइपों में नहीं बांध दिया गया है। आप स्टेशन पर से गुज़रते हुए उन पाइपों को देख सकते हैं। तुम पुरुष बहुत गड़बड़झाला करते हो। पर जब मैं अपनी जवानी के दिनों की करतूतों के बारे में सोचती हूं तो मुझे लगता है कि मुझे यह सब कहने का कोई अधिकार नहीं है। लगभग चालीस हज़ार वर्ष पूर्व इतनी ठंड थी कि एक हिम नदी मुसवेल हिल के पास तक आ गई थी और यहां तक साल भर बर्फ जमी रहती थी। जब कुछ चीज़ें गर्म हुईं तो बर्फ पिघल गयी, हिमनदी नदी में तब्दील हो गई। उस समय वेण्डल लगभग इतनी बड़ी थी जितनी आज थेम्स है। और वो सब कीचड़ जो हम बहा ले जाया करते थे, बहुत डरावना था वो। हां, मैंने अपने ज़माने में बहुत गडबड की है।"

"क्या ऐसा कुछ और है जो मैं तुम्हें इस दोपहर में दिखा सकती हूं? मेरे पास बहुत ही सुन्दर जादुई इस्त्री है। और जूतों के कुछ जादुई तस्में भी हैं जिन्हें शायद तुम आज़माना चाहोगे। पर हां, कभी-कभी वे तकलीफ देह भी हो सकते हैं।"

निश्चित ही मैं जूतों के जादुई तस्मों को नहीं चाहता था, क्योंकि मैं एक मिस्टर मेकफरलेन नाम के आदमी को जानता हूं जिसने एक जोड़ी ऐसे तस्मे खरीदे थे। वे बहुत ही उपयोगी थे। पर एक दिन वह उन्हें ढीले करने का मंत्र भूल गया तो उसे तीन माह तक जूते पहने ही सोना पड़ा; जब तक कि उसे वह जादूगर नहीं मिल गया जिसे सही मंत्र मालूम था। उसके बाद उसने वह मंत्र एक किताब में लिख लिया और फिर उसे इस तरह की कोई तकलीफ नहीं हुई। पर जब जूते पुराने पड़ने की वजह से फट गए तो उसकी पत्नी ने उन्हें चमार की

दुकान पर तल्ला बदलने के लिए दे दिया। तस्मों ने साधारण दुकान पर भेजा जाना पसंद नहीं किया। उन्होंने कसमसाकर अपने को जूतों में से निकाल लिया और अपने घर की राह खोजते हुए आगे बढ़ने लगे। बहुत से लोगों ने उन्हें सड़क पर रेंगते हुए देखा और उन्हें पकड़ने की कोशिश करने लगे। पर वे उन्हें पकड़ने में कामयाब न हो पाए, पर उन्होंने मिस्टर मेकफरलेन के बगीचे तक उनका पीछा किया और उनकी खोज में सारे फूल कुचल डाले। और जब तस्मे घर में घुसे तो रसोइया उन्हें सांप समझकर डर गया और चिल्लाने लगा। कोई आश्चर्य नहीं कि मैंने साधारण तस्मे खरीदना ही उचित समझा, भले ही वे कभी-कभार टूट जाते हैं। मैंने मिस वेन्डल को धन्यवाद दिया और अपने कॉलर के जादुई बटन को लेकर चला आया।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी एवं विख्यात विज्ञान लेखक। कई विज्ञान गल्प कथाएं भी लिखी हैं। यहां उनकी कहानियों के संकलन 'माइ फ्रेन्ड मिस्टर लीकी' से एक कहानी 'माइ मेजिक कॉलर स्टड' का अनुवाद दिया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद: अशोक थुवगर: होशंगाबाद में रहते हैं, पढ़ने-लिखने में रुचि, फोटोग्राफी भी करते हैं।

खोज न्यूटन ही क्यों कर सका

पहले खोजी पर चट्टान गिरी ....

दूसरे खोजी पर सेब का पेड़ गिरा ....

न्यूटन पर इत्तेफाक से सिर्फ सेब ही गिरा ....

साइंटिफिक अमेरिकन पत्रिका से साभार

सवालीराम से पूछा है सवाल

पिछले दिनों मैंने अपने घर पर एक प्रयोग किया। मैंने एक लोहे का टुकड़ा और एक टूटी हुई स्टील की चम्मच पौधों की क्यारियों में रख दी कुछ दिनों के बाद लोहे के टुकड़े पर तो काफी सारी जंग लगी थी लेकिन स्टील की चम्मच वैसी की वैसी चमचमा रही थी। मेरा सवाल है कि जब स्टील की चम्मच भी लोहे से बनी है तो उसमें जंग क्यों नहीं लगता?

– नम्रता रघुवंशी, पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद।

ज़रा सिर खुजलाइए

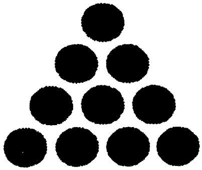

हो सकता है आपने सिक्कों को कई बार इस पैर्टन में जमाया होगा। यदि आपने गौर किया हो तो इस पैर्टन में कई समबाहु त्रिभुज बन रहे हैं। अब आपको सिर्फ इतना करना है कि इन 10 सिक्कों में से कुछ सिक्के इस तरह हटाने हैं कि किसी भी आकार का समबाहु त्रिभुज न बन सके। बस आखरी बात यह है कि आप कितने कम-से-कम सिक्के हटाकर ऐसा कर पाते हैं यही कसौटी है आपके सही जवाब की।

इन दोनों सवालों के जवाब हमें इस पते पर लिखकर भेजें:

संदर्भ

द्वारा एकलव्य कोठी बाज़ार

होशंगाबाद, म. प्र. पिन: 461001

शिकारी से बचने की जुगत

विकास की लगातार चलती प्रक्रिया में शिकार होने से बचने के लिए विभिन्न जंतुओं में अलग-अलग तरह की क्षमताएं विकसित हुई हैं। कुछ जीव खतरा भांपकर सिर पर पांव रखकर भाग खड़े होते हैं, वहीं किसी जीव का रंग अपने आसपास के वातावरण से इतना मिलता-जुलता है कि उसे खोज पाना ही मुश्किल हो जाता है। तो कुछ जंतु अपने आसपास के वातावरण के हिसाब से अपना रंग बदल पाने में सक्षम होते हैं। कुछ जीव ज़हरीले होते हैं, तो कुछ दुर्गंध से भरे और कुछ तो दुर्गंधयुक्त द्रव की फुहार अपने दुश्मनों पर छोड़ते हैं।

खैर, जीवों के अपने सुरक्षा कवच हैं जो विकास की लंबी प्रक्रिया के दौरान विकसित हुए हैं। यहां हम ऐसे ही एक जीव के सुरक्षा कवच की चर्चा करेंगे जो खुद को असुरक्षित पाते ही एक तेज़ बदबूदार द्रव पदार्थ को स्प्रे करता है।

कई आर्थोपॉड में एक खास किस्म की ग्रंथि होती है। इस ग्रंथि से निकलने वाले तरल पदार्थ का इस्तेमाल ये अपने दुश्मनों के खिलाफ करते हैं। इन्हीं आर्थोपॉड की जमात में शामिल है बम्बार्डियर बीटल (Bombardier Beetle)। यह बीटल भी बदबूदार तरल से लैस होता है। यह तरल उसके उदर के सिरे से बाहर निकलता है। किसी संभावित खतरे को देखते ही यह बीटल अपने उदर को मोड़कर, निशाना साधकर ज़ोर से स्प्रे करता है कि दुश्मन हक्का-बक्का रह जाता है। इसके निशाना साधने के बारे में ऐसा कहा जाता है कि यह एक चींटी पर भी प्रहार कर सकता है।

इसके स्प्रे में बदबूदार और तकलीफदेह रसायन होते हैं जो शिकारी के मुंह, नाक, आंखों पर खासा असर डालते हैं। बीटल का यह स्प्रे जितना चींटियों के खिलाफ कारगर रहता है उतना ही कुछ और रीढ़धारियों के खिलाफ भी।

कुछ चूहों के खिलाफ यह स्प्रे काम नहीं आता क्योंकि इन चूहों में इस स्प्रे को सहने की क्षमता विकसित हो गई है जिसकी वजह से बीटल द्वारा स्प्रे करने के कुछ क्षणों बाद चूहे इस बीटल को आराम से खा लेते हैं।

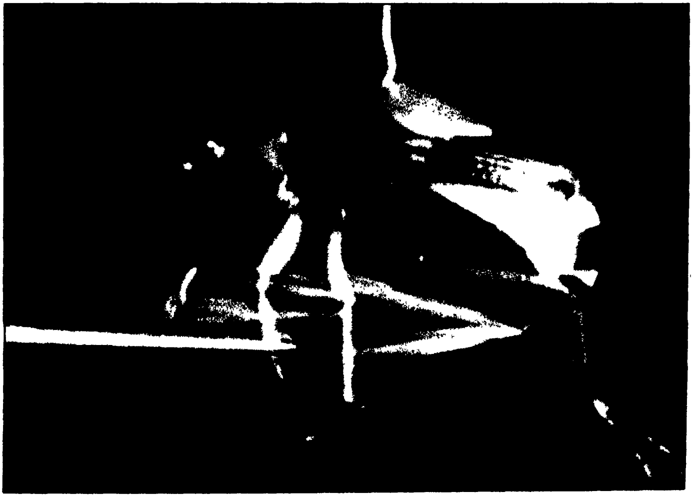

बम्बार्डियर बीटल अपनी सुरक्षा प्रणाली का इस्तेमाल करते हुए। पहले चित्र में उसके उदर के सिरे से पिछली टांगों के पास स्प्रे हो रहा है। दूसरे चित्र में उसने अपने दुश्मन की स्थिति को भांपते हुए अपने उदर को थोड़ा मोड़कर स्प्रे की दिशा को साधा और फिर जमकर स्प्रे किया। ऐसा करते समय बीटल स्प्रे अपने निशाने तक पहुंच सके यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी टांग को उठाकर स्प्रे के मार्ग से हटा लेता है।

12760

प्रकाशक की ओर से राजेश त्रिवेदी द्वारा भटारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई 3/12, अरेरा कॉलोनी भोपाल में मुद्रित एवं प्रकाशक ई/7 एच.आई.जी. 453 अरेरा कॉलोनी, भोपाल, 462016 से प्रकाशित।
संपादक: राजेश त्रिवेदी